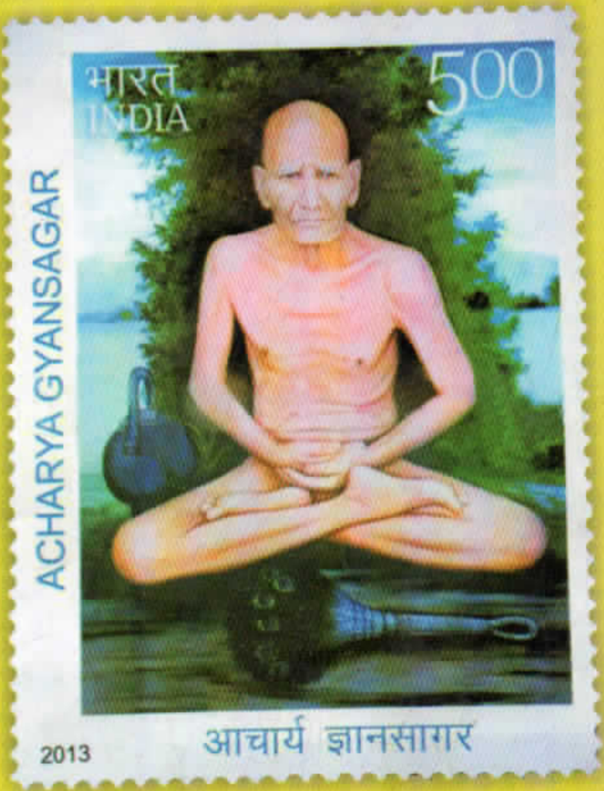

श्रमण संस्कृति सिद्धान्त प्रवेशिका

भाग - तृतीय

- प्रकाशक -
श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान
वीरोदय नगर, सांगानेर, जयपुर (राज.)

पंचम संस्करण : 2000
अक्टूबर, 2017

❊ ❊ ❊

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

❊ ❊ ❊

आशीर्वाद

आचार्य श्री 108विद्यासागर जी महाराज

❊ ❊ ❊

प्रेरणा

मुनिपुंगव श्री 108सुधासागर जी महाराज (ससंघ)

❊ ❊ ❊

कृति

श्रमण संस्कृति सिद्धान्त प्रवेशिका भाग-3

❊ ❊ ❊

सम्पादक

पं. रतन लाल बैनाड़ा

डॉ. शीतलचन्द्र जैन

सह-सम्पादक

पं. प्रदीप जैन

❊ ❊ ❊

मूल्य

16/- रुपये (पुनः प्रकाशन हेतु)

❊ ❊ ❊

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान

वीरोदय नगर, नशियाँ रोड

सांगानेर- 302 029 जयपुर (राज.)

फोन : 0141-2730552, 3941222

❊ ❊ ❊

मुद्रक :

महावीर प्रिन्टिंग

बी.2, बाईपास चौराहा, जयपुर

मो.: 9414073465

कहाँ / क्या ?

खण्ड-1

1.	प्रार्थना	1
2.	पंच परमेष्ठी के मूलगुण	2
3.	तीर्थंकर पार्श्वनाथ	8
4.	स्तुति	10
5.	तीर्थंकर वर्धमान	13
6.	वीर शासन जयन्ती	15
7.	षट्लेश्या	16
8.	जीवंधर स्वामी	18
9.	कर्म	20
10.	ऐतिहासिक जैन महापुरुष	25
11	पुण्य - पाप	29
12	आचार्य श्री विद्यासागर जी	31

खण्ड-2

1.	दर्शन स्तुति	34
2.	अभक्ष्य	35
3.	जिनेन्द्र भक्त सेठ	37
4.	व्रत	38
5.	गणेश प्रसाद वर्णी	40
6.	ग्यारह प्रतिमा	41
7.	वारिषेण	43
8.	अहिंसा	45
9.	राजा श्रेणिक	47
10.	ध्यान	50
11	श्रुतपंचमी पर्व	52
12	आलोचना पाठ	54

आभार

इस कृति में जिन मुनिराजों, त्यागी व्रतियों, मनीषियों एवं विद्वानों की रचनाओं को समावेशित किया गया है और जिन महत्त्वपूर्ण पुस्तकों, कृतियों, ग्रंथों से श्रमपूर्वक सामग्री का चयन प्रत्यक्षतः परोक्षतः किया गया है-उन सबके प्रति मैं अपने हृदय के गहनातिगहन तल से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

सम्पादक

पाठ-1

प्रार्थना

हे ! शान्त सन्त अरहन्त अनन्त ज्ञाता, हे ! शुद्ध बुद्ध जिन सिद्ध अबद्ध धाता।
आचार्यवर्य उवझाय सुसाधु सिन्धू, मैं बार-बार तुम पाद-पयोज वन्दूँ॥
है मूलमंत्र नवकार सुखी बनाता, जो भी पढ़े विनय से अघ को मिटाता।
है आद्य मंगल यही सब मंगलों में, ध्याओ इसे न भटको जग जंगलों में॥
सर्वज्ञ देव अरहन्त परोपकारी, श्री सिद्ध वंद्य परमातम निर्विकारी।
श्री केवली कथित आगम साधु प्यारे, ये चार मंगल,अमंगल को निवारे॥
श्री वीतराग अरहन्त कुकर्मनाशी, श्री सिद्ध शाश्वत सुखी शिवधाम वासी।
श्री केवली कथित आगम साधु प्यारे, ये चार उत्तम,अनुत्तम शेष सारे
जो श्रेष्ठ हैं शरण,मंगल कर्मजेता, आराध्य हैं परम हैं शिवपंथ नेता।
हैं वंद्य खेचर नरों असुरों सुरों के, वे ध्येय पंचगुरु हों, हम बालकों के॥

पाठ-2

पंचपरमेष्ठी के मूलगुण

जो आत्मा के पदों और गुणों में सबसे बड़े होते हैं, राजा महाराजा व इन्द्र जिन्हें सिर झुकाते हैं, उन्हें परमेष्ठी कहते हैं अथवा जो परमपद में स्थित हों, उन्हें परमेष्ठी कहते हैं। परमेष्ठी पाँच होते हैं -1. अरिहन्त, 2. सिद्ध, 3. आचार्य, 4. उपाध्याय और 5. साधु।

1. अरिहन्त परमेष्ठी

जिनके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार घातिया कर्म नष्ट हो गये हैं। जिनके 46 मूलगुण होते हैं और जो 18 दोषों से रहित होते हैं, उन्हें अरिहन्त परमेष्ठी कहते हैं।

अरिहन्त परमेष्ठी के मूलगुण –

चौंतीसों अतिशय सहित, प्रातिहार्य पुनि आठ।
अनंत चतुष्टय गुण सहित ये छियालीसों पाठ॥
दश अतिशय हैं जन्म के, दश ही केवलज्ञान।
चौदह होते देवकृत, अतिशय चौंतीस जान॥

अर्थात् 34 अतिशय, 8 प्रातिहार्य और 4 अनन्तचतुष्टय ये 46 मूलगुण हैं। 34 अतिशयों में से 10 अतिशय जन्म के होते हैं, 10 केवलज्ञान के होते हैं और 14 देवकृत होते हैं।

जन्म के दश अतिशय–

अतिशय रूप सुगन्ध तन, नाहिं पसेव निहार।
प्रियहितवचन अतुल्यबल, रुधिर श्वेत आकार॥
लच्छन सहस रु आठ तन, समचतुष्क संठान।
वज्रवृषभनाराचजुत, ये जनमत दश जान॥

भावार्थ-1.अरिहन्त भगवान् का शरीर जन्म से ही बड़ा सुन्दर सुडौल होता है। 2.उनके शरीर से बड़ी अच्छी सुगन्ध आती है। 3.उनके शरीर में पसीना नहीं आता है। 4. मल-मूत्र नहीं होता है। 5.वे सबसे मीठे वचन बोलते हैं। 6.उनके शरीर में अतुल्य बल होता है। 7. उनका रक्त दूध के समान सफेद होता है। 8.उनके शरीर में 1008 शुभ लक्षण होते हैं। 9.उनका समचतुष्क संस्थान होता है। 10.उनके शरीर के हाड़ वगैरह वज्र के होते हैं ।

केवलज्ञान के दश अतिशय–

योजन शत इक में सुभिख, गगन गमन मुख चार।
नहिं अदया उपसर्ग नहिं, नाहीं कवलाहार॥
सब विद्या-ईश्वरपनो, नाहिं बढ़ें नख केश।
अनिमिष दृग छाया रहित, दश केवल के वेश॥

भावार्थ-1.जब अरिहन्त भगवान् को केवलज्ञान होता है तो उस समय जहाँ भगवान् होते हैं, उस स्थान पर चारों तरफ सौ-सौ योजन तक सुकाल रहता है। 2.आकाश में गमन होता है। 3.देखने वालों को चारों तरफ उनका मुख दिखलाई देता है। 4.उनके शरीर से किसी भी जीव की हिंसा नहीं होती। 5.उन पर कोई उपसर्ग नहीं कर सकता 6.कवलाहार नहीं लेते हैं, 7.वे समस्त विद्या और शास्त्रों के ज्ञाता होते हैं। 8. उनके बाल और नाखून नहीं बढ़ते हैं 9. उनकी पलकें नहीं झपकती हैं, 10. शरीर की परछाईं नहीं पड़ती है। ये दश अतिशय केवलज्ञान होने के समय प्रकट होते हैं।

देवकृत चौदह अतिशय –

देवरचित हैं चारदस, अर्द्धमागधी भाष।
आपस माहीं मित्रता, निर्मल दिश आकाश॥
होत फूल फल ऋतु सबै, पृथ्वी कांच समान।
चरण कमल तल कमल हैं, नभ तैं जय जय बान॥
मन्द सुगन्ध बयार पुनि, गन्धोदक की वृष्टि।
भूमि विषै कण्टक नहीं, हर्षमयी सब सृष्टि॥
धर्मचक्र आगे रहे, पुनि वसु मंगल सार।
अतिशय श्री अरिहन्त के, ये चौंतीस प्रकार॥

भावार्थ-1.भगवान् की दिव्यध्वनि अर्द्धमागधी भाषा में होना। 2.समस्त जीवों में परस्पर मित्रता का होना। 3.दिशाओं का निर्मल होना। 4.आकाश का निर्मल होना। 5.सब ऋतुओं के फल-फूल धान्यादि का एक ही समय फलना फूलना। 6.एक योजन तक की पृथ्वी का दर्पण की तरह निर्मल होना। 7. चलते समय भगवान् के चरण कमलों के नीचे स्वर्ण कमलों का होना। 8. आकाश में जय-जय ध्वनि का होना। 9.मन्द सुगन्धित पवन का चलना। 10. सुगन्धमय जल की वृष्टि होना। 11.पवनकुमार देवों के द्वारा भूमि का कण्टक रहित होना। 12. समस्त जीवों का आनन्दमय होना। 13.भगवान् के आगे धर्मचक्र का चलना। 14. छत्र, चमर, ध्वजा, घंटा आदि अष्ट मंगल द्रव्यों का साथ रहना। इस प्रकार सब मिलाकर 34 अतिशय अरिहन्त भगवान् के होते हैं।

अष्ट प्रातिहार्य–

तरु अशोक के निकट में, सिंहासन छविदार।
तीन छत्र सिर पर लसैं, भामण्डल पिछवार॥
दिव्यध्वनि मुखतें खिरै, पुष्पवृष्टि सुर होय।
ढोरें चौसठ चमर जख, बाजैं दुन्दुभि जोय॥

भावार्थ-1.भगवान् के समीप अशोक वृक्ष का होना। 2.रत्नमय सिंहासन होना। 3.भगवान् के सिर पर तीन छत्र का होना। 4. भगवान् की पीठ के पीछे भामण्डल का होना। 5.भगवान् के मुख से दिव्यध्वनि का खिरना। 6.देवों के द्वारा फूलों की वर्षा होना। 7. यक्ष जाति के देवों द्वारा चौसठ चमरों का ढुरना। 8. दुंदुभि बाजों का बजना, ये आठ प्रातिहार्य हैं।

अनन्त चतुष्टय –

ज्ञान अनन्त, अनन्त सुख, दरश अनन्त प्रमान।
बल अनन्त अरिहंत सो, इष्टदेव पहिचान॥

भावार्थ–1.अनन्त दर्शन, 2.अनन्त ज्ञान, 3.अनन्त सुख, 4.अनन्त वीर्य ये चार अनन्त चतुष्टय कहे जाते हैं। इस प्रकार 34 अतिशय, 8 प्रातिहार्य, 4 अनंत चतुष्टय। सब मिलाकर 46 मूलगुण अरिहन्त भगवान् के होते हैं।

2. सिद्ध परमेष्ठी

जो आठों कर्मों का नाश करके संसार के बन्धन से सदैव के लिए मुक्त हो गए हैं, अर्थात् जो फिर कभी संसार में लौटकर नहीं आयेंगे, उन्हें सिद्ध परमेष्ठी कहते हैं। इनके 8 मूलगुण होते हैं–

सिद्ध परमेष्ठी के मूलगुण –

समकित दर्शन ज्ञान, अगुरुलघु अवगाहना।
सूक्षम वीरजवान, निराबाध गुण सिद्ध के॥

1. अनन्त सम्यक्त्व, 2.अनन्त दर्शन, 3.अनन्त ज्ञान, 4. अगुरुलघु, 5. अवगाहनत्व, 6. सूक्ष्मत्व, 7. अनन्तवीर्य, 8. अव्याबाधत्व।

3. आचार्य परमेष्ठी

जो मुनि संघ के अधिपति होते हैं, उनको दीक्षा तथा प्रायश्चित्त आदि देते हैं। जिनके 36 मूलगुण होते हैं तथा जो पञ्चाचार का पालन स्वयं करते हैं एवं दूसरे मुनियों से कराते हैं, उन्हें आचार्य परमेष्ठी कहते हैं।

आचार्य परमेष्ठी के मूलगुण–

द्वादश तप, दश धर्मजुत, पालें पंचाचार।
षट आवश्यक, गुप्ति त्रय, आचारज गुण सार॥

बारह तप–

अनशन ऊनोदर करे, व्रतसंख्या रस छोर।
विविक्त शय्यासन धरे, कायकलेश सुठौर॥
प्रायश्चित धर विनयजुत, वैयावृत स्वाध्याय।
पुनि उत्सर्ग विचारके, धरे ध्यान मन लाय॥

इच्छाओं का जीतना तप है। 1. **अनशन तप**- चार प्रकार के आहार का त्याग करना। 2. **ऊनोदर तप**–भूख से कम भोजन करना, 3. **वृत्तिपरिसंख्यान तप**-भोजन को जाते समय अटपटी प्रतिज्ञा लेना। 4. **रसपरित्याग तप**- छहों रसों या एक दो आदि रसों का त्याग करना। 5. **विविक्तशय्यासन तप**-स्वाध्याय ध्यान आदि की सिद्धि के लिये एकांत तथा पवित्र स्थान में सोना बैठना। 6.**कायक्लेश तप**-शरीर को वश करने के लिये उसे सर्दी,गर्मी आदि का कष्ट देना। 7. **प्रायश्चित तप**-दोषों की शुद्धि के लिये दंड ग्रहण करना। 8. **विनयतप**- रत्नत्रय व उसके धारकों की विनय करना। 9. **वैयावृत्य तप**-रोगी या वृद्ध मुनि की सेवा करना।

10. स्वाध्याय तप-शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, विचारना और उपदेश देना। **11. व्युत्सर्गतप**-शरीर से ममता छोड़ना। **12. ध्यानतप**-एकाग्रता से आत्म चिन्तन करना। ये 12 तप हैं।

दश धर्म–

क्षमा मार्दव आरजव, सत्यवचन, चितपाग।
संयम तप त्यागी सरव, आकिंचन तियत्याग॥

1. उत्तम क्षमा-क्रोध के कारण उपस्थित रहते हुए भी क्रोध नहीं करना। **2. उत्तम मार्दव**-उत्तम कुल, विद्या, बल आदि का घमंड नहीं करना। **3. उत्तम आर्जव**-मायाचार का त्याग करना। **4. उत्तम शौच**-लोभ का त्याग करना आत्मा को पवित्र बनाना। **5. उत्तम सत्य**-रागद्वेष पूर्वक असत्य वचनों को छोड़कर हित मित प्रिय वचन बोलना। **6. उत्तम संयम** -5 इन्द्रिय और मन को वश में करना तथा छह काय के जीवों की रक्षा करना। **7.उत्तम तप**-बाह्याभ्यन्तर 12 प्रकार के तपों का करना। **8. उत्तम त्याग**-कीर्ति तथा प्रत्युपकार की वांछा से रहित होकर चार प्रकार का दान देना। **9. उत्तम आकिञ्चन्य**-पर पदार्थों में ममत्वरूप परिणामों का त्याग करना। और **10. उत्तम ब्रह्मचर्य**-स्त्री मात्र का त्यागकर एवं आत्मा के शुद्ध स्वरूप में लीन रहना) जो प्राणियों को संसार से छुड़ाकर उत्तम सुख प्राप्त कराता है, वह धर्म कहलाता है।

पञ्चाचार और तीन गुप्ति–

दर्शन ज्ञान चरित्र तप, वीरज पंचाचार।
गोपें मन वच काय को, गिन छत्तीस गुण सार॥

दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार ये पाँच आचार हैं। 1. सम्यग्दर्शन के दोष हटाना **दर्शनाचार** कहलाता है। 2. सम्यग्ज्ञान को बढ़ाना और उसके दोष हटाना **ज्ञानाचार** कहलाता है। 3. सम्यक्चारित्र को विशुद्ध करना **चारित्राचार** है। 4. तप की वृद्धि करना **तपाचार** कहलाता है। 5. आत्मबल को प्रकट करना **वीर्याचार** कहलाता है। ज्ञान आदि के दोष हटाना और उन्हें बढ़ाना आचार है।

छह आवश्यक–

समता धर वंदन करे, नाना थुति बनाय।
प्रत्याख्यान प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग लगाय॥

आवश्यक-प्रतिदिन करने योग्य जरूरी कार्यों को आवश्यक कहते हैं। समता, वन्दना, स्तुति, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग ये 6 आवश्यक हैं। 1. समस्त जीवों से समताभाव **समता** कहलाती है। 2. किसी एक तीर्थंकर या सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु परमेष्ठी का गुणगान करना **वन्दना** कहलाती है। 3. चौबीस तीर्थंकरों का स्तवन **स्तुति** कहलाती है। 4. लगे हुये दोषों पर पश्चाताप **प्रतिक्रमण** कहलाता है। 5. भविष्यत् काल में दोषों का त्याग करना **प्रत्याख्यान** कहलाता है। 6. खड़े होकर ध्यान लगाना तथा शरीर से ममत्व छोड़ना **कायोत्सर्ग** कहलाता है।

4. उपाध्याय परमेष्ठी

जो 11 अंग और 14 पूर्व के पाठी होते हैं, जो स्वयं पढ़ते और अन्य पास में रहने वाले भव्य-जीवों को पढ़ाते हैं, जिनके 25 मूलगुण होते हैं,उन्हें उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं।

उपाध्याय परमेष्ठी के 25 मूलगुण–

ग्यारह अंग

प्रथमहिं आचारांग गनि, दूजो सूत्रकृतांग।
ठाणअंग तीजो सुभग, चौथो समवायांग॥
व्याख्यापण्णति पांचमों, ज्ञातृकथा षट् जान।
पुनि उपासकाध्ययन है, अंतः कृत दश ठान॥
अनुत्तरण उत्पाद दश, सूत्रविपाक पिछान।
बहुरि प्रश्नव्याकरण जुत, ग्यारह अंग प्रमान॥

1-आचारांग, 2-सूत्रकृताङ्ग, 3-स्थानाङ्ग, 4-समवायाङ्ग, 5-व्याख्याप्रज्ञप्ति अङ्ग, 6-ज्ञातृधर्मकथाङ्ग, 7-उपासकाध्ययनाङ्ग, 8-अंतकृद्दशाङ्ग, 9-अनुत्तरोपपादिकदशाङ्ग, 10-प्रश्नव्याकरणाङ्ग, 11-विपाकसूत्राङ्ग ये 11 अंग हैं।

चौदह पूर्व

उत्पादपूर्व अग्रायणी, तीजो बीरजवाद।
अस्तिनास्तिपरिवाद पुनि, पंचम ज्ञानप्रवाद॥
छट्ठो कर्मप्रवाद है, सतप्रवाद पहिचान।
अष्टम आत्मप्रवाद पुनि, नवमों प्रत्याख्यान॥
विद्यानुवाद पूरव दशम, पूर्वकल्याण महन्त।
प्राणवाद किरिया बहुल, लोकबिन्दु है अन्त॥

उत्पादपूर्व, अग्रायणीयपूर्व, वीर्यानुवाद, अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व, ज्ञानप्रवादपूर्व, कर्मप्रवाद पूर्व, सत्यप्रवादपूर्व, आत्मप्रवादपूर्व, प्रत्याख्यानप्रवाद पूर्व, विद्यानुवाद पूर्व, कल्याणानुवादपूर्व, प्राणवादप्रवाद, क्रियाविशाल तथा लोकबिन्दुसार ये 14 पूर्व हैं।

5. साधु परमेष्ठी

जिनके 28 मूलगुण होते हैं,जो ज्ञान, ध्यान और तप में लीन रहते हैं ,जो आरम्भ, परिग्रह नहीं रखते हैं, जो हमेशा आत्म साधना स्वरूप मोक्षमार्ग में लगे रहते हैं, उन्हें साधु परमेष्ठी कहते हैं ।

साधु परमेष्ठी के 28 मूलगुण –

पञ्च महाव्रत समिति औ, पञ्चेन्द्रिय का रोध।
षट् आवश्यक साधुगुण, सात शेष अवबोध॥

5 महाव्रत, 5 समिति, 5 इन्द्रियविजय 6 आवश्यक और शेष ये 28 साधु परमेष्ठी के मूलगुण हैं।

पञ्च महाव्रत–

हिंसा अनृत तस्करी, अब्रह्म परिग्रह पाप।
मन वच तन तें त्यागवो, पंच महाव्रत थाय॥

मन,वचन,काय से पाँचों पापों का पूर्णत्याग होना, **महाव्रत** कहलाता है। अहिंसादि पाँच महाव्रत हैं। मन, वचन, काय से सर्वथा हिंसा का त्याग होना **अहिंसा महाव्रत** कहलाता है। मन, वचन, काय से सर्वथा असत्य का त्याग होना **सत्य महाव्रत** कहलाता है। मन, वचन, काय से चोरी का सर्वथा त्याग होना **अचौर्य महाव्रत** कहलाता है। मन, वचन, काय से मैथुन का सर्वथा त्याग होना **ब्रह्मचर्य महाव्रत** कहलाता है। मन, वचन, काय से परिग्रह का सर्वथा त्याग होना **अपरिग्रह महाव्रत** कहलाता है।

पञ्च समिति–

ईर्या भाषा एषणा, पुनि क्षेपण आदान।
प्रतिष्ठापनाजुत क्रिया, पांचों समिति विधान॥

गमनादि में जीवघात से बचने के लिये यत्नाचार रखना समिति कहलाती है। ईर्या आदि पाँच समितियाँ होती हैं। **ईर्यासमिति**-चार हाथ आगे जमीन देखकर चलना। **भाषा समिति**-हित मित प्रिय वचन बोलना। **एषणा समिति**-दिन में एकबार शुद्ध निर्दोष आहार लेना। **आदान निक्षेपण समिति**-देखभालकर किसी वस्तु को उठाना रखना। और **प्रतिष्ठापनासमिति**-जीव रहित स्थान में मलमूत्र क्षेपण करना।

शेष गुण–

सपरस रसना नासिका, नयन श्रोत्र का रोध।
शेष सात मंजन तजन, शयन भूमिका शोध॥
वस्त्रत्याग कचलुंच अरु, लघु भोजन इक बार।
दांतुन मुख में ना करें, ठाड़े लेहिं अहार॥

1. स्पर्शन, 2. रसना, 3. घ्राण, 4. चक्षु, 5. श्रोत्र, इन पाँच इन्द्रियों को वश में करना, 6. समता, 7. वन्दना, 8. स्तुति, 9. प्रतिक्रमण, 10. प्रत्याख्यान, 11. कायोत्सर्ग, 12. स्नान का त्याग करना, 13.निर्जन्तु भूमि पर सोना, 14. वस्त्रत्याग करना, 15. बालों का उखाड़ना, 16. एक बार थोड़ा भोजन करना, 17. दन्तधावन अर्थात् दातुन न करना, 18. खड़े होकर आहार लेना और 5 महाव्रत, 5 समिति इस प्रकार से सब मिलाकर 28 मूलगुण सर्व सामान्य मुनियों के होते हैं। मुनिजन इनका पालन करते हैं। यदि एक भी मूलगुण इनमें से रह जाय तो मुनिपना नहीं रहता।

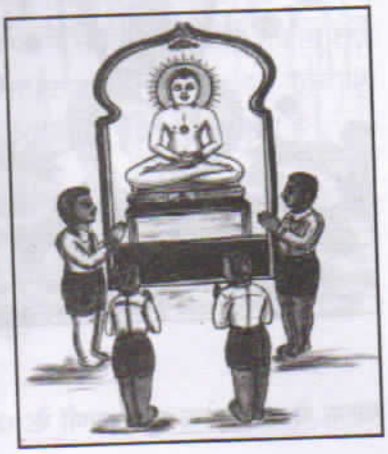

पाठ-3

तीर्थंकर पार्श्वनाथ

पोदनपुर के राजा अरविन्द के कमठ और मरुभूति नामक दो मंत्री थे। ये दोनों सगे भाई होकर भी विष और अमृत के समान बिल्कुल स्वभाव से भिन्न थे। एक समय राज्यकार्य से मरुभूति बाहर गया था, उस समय कमठ ने मरुभूति की स्त्री के साथ व्यभिचार का प्रयास किया। परिणामस्वरूप राजा अरविन्द ने उसे दण्डित कर देश से निकाल दिया। तब कमठ अपमान से दु:खी होकर किसी तापस आश्रम में जाकर हाथ में पत्थर की शिला उठाकर कुतप करने लगा।

मरुभूति को पता चलते ही भातृ स्नेह के कारण उसे वापस लेने को पहुँचा, परन्तु मरुभूति को देखते ही कमठ ने क्रोध से उसके सिर पर शिला पटक दी। मरुभूति मरकर हाथी हुआ। एक दिन राजा अरविन्द मुनि होकर संघ सहित यात्रा पर जा रहे थे, तो मार्ग में उपद्रव करता हुआ हाथी वहाँ आया और उसे मुनिराज को देखते ही जातिस्मरण हो गया, जिसके कारण वह शान्त हो गया। मुनिराज के उपदेश से उसने सम्यक्त्व और पंचाणुव्रत ग्रहण कर लिए। एक दिन वह सूखे पत्ते खाकर नदी में पानी पीने गया और वहाँ कीचड़ में फँस गया। तब पूर्वस्मरण से कमठ का जीव जो सर्प बना था उसने उसे काट लिया, तब हाथी णमोकार मंत्र का स्मरण करते हुए मरकर देव बना और सर्प मरकर नरक गया।

हाथी का जीव देवपर्याय से चय कर रश्मिवेग राजा हुआ, पुन: मुनि होकर स्वर्ग को प्राप्त हुआ, पुन: वहाँ से आकर वज्रनाभि चक्रवर्ती हुआ, पुन: दीक्षा ली तब भील (कमठ के जीव) ने उन पर उपसर्ग किया। वज्रनाभि चक्रवर्ती का जीव ग्रैवेयक में अहमिन्द्र पद को प्राप्त हुआ और वहाँ से आकर आनन्द नामक मंडलेश्वर राजा हुआ, पुन: जिनदीक्षा लेकर सोलहकारण भावनाओं के भाने से तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया और समाधिपूर्वक मरण करके सोलहवें स्वर्ग में इन्द्र पद को प्राप्त किया।

काशी देश की बनारस नगरी में आज से करीब तीन हजार वर्ष पहले इक्ष्वाकुवंश के कश्यप गोत्रीय राजा अश्वसेन एवं उनकी विदुषी रानी वामादेवी के गर्भ से पौष कृष्णा एकादशी के दिन बालक का जन्म हुआ। इन्द्रों ने सुमेरुपर्वत पर जन्माभिषेक के बाद तीर्थंकर बालक का नाम पार्श्वकुमार रखा। इनकी आयु 100 वर्ष की थी। शरीर का वर्ण मरकत मणि के समान हरा था। शरीर की ऊँचाई 9 हाथ प्रमाण थी। पार्श्वकुमार जन्म से ही प्रतिभाशाली और मति-श्रुत एवं अवधिज्ञान के धारक थे। वे अनेक शुभलक्षणों के धनी, अतुल्य बल से युक्त, आकर्षक व्यक्तित्व वाले बालक थे।

एक दिन प्रातःकाल वे अपने साथियों के साथ घूमने जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने देखा कि उनके नाना साधुवेश में पंचाग्नि तप कर रहे थे। पार्श्व कुमार ने कहा कि इसमें नागयुगल जल रहे हैं तो उन्होंने क्रोध के आवेश में लकड़ी चीर डाली। उसमें से एक सर्प युगल निकला, जो अधजला तड़फ रहा था। पार्श्वकुमार के उपदेश के प्रभाव से वह सर्प युगल धरणेन्द्र और पद्मावती हुआ। यह तापसी मरकर संवर नामक ज्योतिषी देव हुआ।

युवा होने पर माता-पिता के बहुत प्रयत्न करने पर भी पार्श्वकुमार ने विवाह नहीं किया, वे बाल ब्रह्मचारी ही रहे। एक दिन राजा अश्वसेन के पास अयोध्या का एक दूत आया। पार्श्वकुमार ने अयोध्या का हाल पूछा तो उसने ऋषभ आदि तीर्थंकरों का चरित्र सुनाया। पार्श्वकुमार को ऋषभ आदि का चरित्र सुनने से वैराग्य हो गया और उन्होंने 30 वर्ष की अवस्था में ही पौषकृष्णा एकादशी के दिन दिगम्बर जिनदीक्षा धारण कर ली।

वे अखण्ड मौन व्रत धारणकर आत्मसाधना से लीन हो गये। एक बार वे अहिच्छत्र वन में ध्यानस्थ थे। ऊपर आकाश मार्ग से संवर ज्योतिषी देव निकला, अचानक विमान रुक जाने से जब उसने मुनि को देखा तो उसने क्रोध में आकर महान् उपसर्ग किया। परन्तु पार्श्वनाथ आत्म साधना से नहीं डिगे और उन्हें चैत्र कृष्णा एकादशी के दिन केवलज्ञान की प्राप्ति हुई और तत्काल वहाँ समवशरण निर्मित हो गया। तब कमठ ने भी अपने कृत्यों का पश्चाताप करते हुये धर्मग्रहण कर लिया। करीब सत्तर वर्ष तक सारे आर्यखण्ड में समवशरण सहित विहार करते हुये भगवान् पार्श्वनाथ ने भव्य जीवों को तत्त्वों का उपदेश दिया। श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने सम्मेदशिखरजी से मोक्ष प्राप्त किया। इसी कारण इस पर्वत को आज भी पारसनाथ हिल कहा जाता है।

अभ्यास प्रश्न

1. तीर्थंकर पार्श्वनाथ का जीवन चरित्र संक्षेप में लिखिए।
2. किस भव में पार्श्वनाथ के जीव ने तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया था?
3. इस पाठ से हमें क्या शिक्षा मिलती है?
4. तीर्थंकर मुनि पार्श्वनाथ पर किसने और क्यों उपसर्ग किया था?

पाठ-4

स्तुति

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द-रस-लीन।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरि-रज-रहस विहीन॥

अर्थ-जो सब ज्ञेयों को जानने वाले हैं, फिर भी अपने ही आनन्दरस में निमग्न हैं, लीन हैं, ऐसे जिनेन्द्रदेव आपकी जय हो। आप मोहनीय (अरि), ज्ञानावरण-दर्शनावरण (रज) व अंतराय कर्म (रहस) से रहित हैं अर्थात् आपके घातियाकर्म नष्ट हो चुके हैं।

जय वीतराग विज्ञान पूर, जय मोह - तिमिर को हरन सूर।
जय ज्ञान अनंतानंत धार, दृग-सुख-वीरज मण्डित अपार॥1॥

अर्थ-आप वीतराग विज्ञान से भरे-पूरे हैं, आपकी जय हो; आप मोहरूपी अंधकार को नष्ट करने वाले सूर्य हैं, आपकी जय हो। आप अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख व अनंतबल के धारी हो।

जय परम शांत मुद्रा समेत, भवि - जन को निज अनुभूति हेत।
भवि-भागन वच जोगे वशाय, तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय॥2॥

अर्थ-परमशान्ति की धारक आपकी छवि, भव्य प्राणियों को निज की अनुभूति कराने के लिए हेतु है, साधन है। भव्यजनों के सौभाग्य तथा मन-वचन-काय के योग से आपकी दिव्यध्वनि प्राप्त होती है, जिसे सुनकर जीवों का मिथ्यात्व दूर हो जाता है।

तुम गुण चिन्तत निज-पर-विवेक, प्रगटै विघटैं आपद अनेक।
तुम जग-भूषण दूषण-वियुक्त, सब महिमायुक्त विकल्प-मुक्त॥3॥

अर्थ-आपके गुणों का चिंतन करने से निज व पर का भेदज्ञान प्रकट होता है और उदय में आयी विपदाएँ भी नष्ट हो जाती हैं, छिन्न-भिन्न होकर बिखर जाती हैं। आप जगत के भूषण हैं, सब दोषों से रहित हैं, सब महिमा के धारक हैं, सब विकल्पजाल (चिंताओं)से मुक्त हैं।

अविरुद्ध शुद्ध चेतनस्वरूप, परमात्म परम पावन अनूप।
शुभ - अशुभ विभाव-अभाव कीन, स्वाभाविक परिणतिमय अछीन॥4॥

अर्थ-आप शुद्ध चेतन-स्वरूप हैं, अबाधित हैं। अद्भुत, परमपावन, परम आत्म स्वरूप हैं। शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के विभावों का आपने अभाव कर दिया है और सदैव स्वाभाविक परिणति से युक्त हैं।

अष्टादश दोष विमुक्त धीर, स्वचतुष्टयमय राजत गंभीर।
मुनि गणधरादि सेवत महंत, नव केवल-लब्धि-रमा धरंत॥5॥

अर्थ-आप धीर हैं, अठारह दोषों से रहित हैं, अरिहंत अवस्था में अनंत चतुष्टय (अनंत दर्शन-ज्ञान-सुख व वीर्य) सहित, गंभीर मुद्रा में सुशोभित हैं। मुनि-गणधर आदि महान् साधुजन आपकी स्तुति करते हैं, भक्ति करते हैं, आप नौ क्षायिक लब्धिओं रूपी लक्ष्मी के धारक हैं।

तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाहिं जै हैं सदीव।
भव-सागर में दुःख छारि वारि, तारन को अवर न आप टारि॥6॥

अर्थ-आपके शासन अर्थात् आप द्वारा दिखाए गए मोक्षमार्ग पर चलकर अगणित जीव मोक्ष गए हैं, जा रहे हैं और सदैव जाएँगे। इस खारे भव-सागर के दुःखों से दुःखी जीवों को आपके अतिरिक्त, आपके सिवा अन्य कोई तारने वाला नहीं है।

यह लखि निज दुःखगद-हरण-काज, तुम ही निमित्त कारण इलाज।
जाने तातैं मैं शरण आय, उचरों निज दुःख जो चिर लहाय॥7॥

अर्थ-मेरे दुःखरूपी योग को हरने के लिए, शमन करने के लिए, आप ही निमित्त कारण होकर इलाज के साधन हैं, यह देख-जानकर मैं आपकी शरण में आया हूँ और सदा से / अनादि से भोग रहे अपने दुःखों को व्यक्त कर रहा हूँ, कह रहा हूँ।

मैं भ्रम्यो अपनपो बिसरि आप, अपनाये विधि-फल-पुण्य-पाप।
निज को पर को करता पिछान, पर में अनिष्टता इष्ट ठान॥8॥

अर्थ-मैं अपने स्वरूप को भूलकर स्वयं ही भटक रहा हूँ मैंने पुण्य व पाप के फल को स्वीकार कर लिया है, मैं अपने को पर का / पर को अपना कर्ता समझता हूँ तथा पर में इष्ट और अनिष्ट की मान्यता करता रहा हूँ। (ये मेरी अनादिकालीन चार भूल हैं)

आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग-मृगतृष्णा जानि वारि।
तन-परिणति में आपो चितार, कबहूँ न अनुभवो स्व-पद सार॥9॥

अर्थ-मैं अनादिकाल से अज्ञान धारण कर भटकता हुआ दुःखी हो गया हूँ। जैसे हरिण मृगतृष्णावश आकुलित होता है। मैंने अपनी इस देह की पर्यायों को अपना स्वरूप ही जाना और उससे निज-स्वरूप के सार का कभी अनुभव नहीं किया।

तुमको बिन जाने जो कलेश, पाये सो तुम जानत जिनेश।
पशु-नारक-नर-सुर-गति-मंझार, भव धरि धरि मर्‍यो अनन्त बार॥10॥

अर्थ-आपको जाने बिना मैंने जो दुःख पाये, हे जिनेश! आप वे सब जानते हैं। नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव पर्यायों में, मैं अनेक बार भव/ जन्म धारण करता रहा और मरता रहा हूँ।

अब काललब्धि बलतैं दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशाल।
मन शांत भयो मिटि सकल द्वन्द, चाख्यो स्वातमरस दुःखनिकंद।।11॥

अर्थ-अब काल लब्धि आने पर हे प्रभु! मैंने आपके दर्शन पाये हैं और आनंदित हुआ हूँ। सारे विकल्पजाल से मुक्त होकर मेरा मन शान्त हुआ है और दुःखों से मुक्त करने वाले अपने आत्मरस का आस्वादन मैंने किया है।

तातैं अब ऐसी करहु नाथ, बिछुरै न कभी तुअ चरण साथ।
तुम गुण गण को नहिं छेव देव, जग तारन को तुम विरद एव॥12॥

अर्थ-इसलिए अब ऐसा कुछ कीजिए कि कभी आपके चरणों का साथ न छूटे। आपके गुणों के समूह का पार नहीं है। आपकी प्रसिद्धि है कि आप संसार को तारने वाले हैं।

आतम के अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय।
मैं रहूँ आप में आप लीन, सो करो होऊँ ज्यों निजाधीन॥13॥

अर्थ-आत्मा का अहित करने वाले पंचेन्द्रिय के विषय और चार कषाय हैं। उनमें मेरी कोई रुचि जागृत न हो। ऐसा कीजिए कि मैं सदा अपने स्वभाव में ही लीन रहूँ/ और आपकी तरह अपने ही आधीन हो जाऊँ।

मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रय-निधि दीजै मुनीश।
मुझ कारज के कारन सु आप, शिव करहु-हरहु मम मोह ताप॥14॥

अर्थ-हे ईश! मेरे और/ अन्य कुछ भी चाह नहीं है। हे मुनीश! मुझे रत्नत्रय रूप संपत्ति दीजिए। मेरे कार्य के लिए आप ही कारण हैं। मेरे मोहरूपी ज्वर का दमन कर मुझे शान्ति प्रदान कीजिए, मेरा कल्याण कीजिए।

शशि शांति करन तप हरन हेत, स्वयमेव तथा तुम कुशल देत।
पीवत पियूष ज्यों रोग जाय, त्यों तुम अनुभवतैं भव नशाय॥15॥

अर्थ-चन्द्रमा शांति करने में और गर्मी के हरने में कारण है, उसी प्रकार आप भी स्वयं ही शांति प्रदान करने वाले और दु:खों को नाश करने वाले हैं। जैसे अमृत पीने से रोग चला जाता है, उसी प्रकार आपका अनुभव करने से संसार भ्रमण का नाश होता है।

त्रिभुवन तिहुँकाल मंझार कोय, नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय।
मो उर यह निश्चय भयो आज, दुख-जलधि उतारन तुम जिहाज॥16॥

अर्थ-तीन लोक व तीन काल में आपके सिवा सुख-दाता अन्य कोई नहीं है। यह मैंने अपने हृदय में निश्चित कर लिया है। आप ही इस दु:ख-समुद्र से पार ले जाने हेतु एकमात्र जहाज हो।

तुम गुणगण-मणि गणपति, गणत न पावहिं पार।
'दौल' स्वल्प-मति किमि कहै, नमूं त्रियोग संभार॥

अर्थ-जब गणधर भी आपके गुणों रूपी मणियों की गिनती नहीं कर सके, फिर मैं आपके गुणों का कथन कैसे कर सकता हूँ? कवि दौलतराम जी कहते हैं कि मैं तो छोटी बुद्धि वाला हूँ अत: क्या कहूँ। मैं मन, वचन, काय को संभालकर, साधकर, आपको नमन करता हूँ।

पाठ-5

तीर्थंकर वर्द्धमान

तीर्थंकर वर्द्धमान का जन्म आज (सन् 2005 से लगभग 2603 वर्ष पूर्व कुण्ड ग्राम (वैशाली) में हुआ था। इनके पिता सिद्धार्थ, बड़े ही नीतिवंत एवं धर्म परायण राजा थे। माता त्रिशला ने चैत्र सुदी 13 को तीर्थंकर बालक को जन्म दिया। इनके जन्मोत्सव हेतु स्वर्ग से अनेक देव आये थे। उन सभी देवों ने सर्वप्रथम आपको ऐरावत हाथी पर बैठाया और सुमेरु की पाण्डुक शिला पर ले गये। वहाँ पर सभी ने धूमधाम से बालक वर्द्धमान का जन्माभिषेक किया। तदनन्तर सौधर्म इन्द्र ने उनके दाहिने पैर के अंगूठे में सिंह का चिह्न देखकर उनका चिह्न 'सिंह' रखा। उसी समय तीर्थंकर बालक के जय-जयकारों से सारा भूमंडल गूँज गया। तदनन्तर सभी ने राजमहल के प्रांगण में आकर जन्मोत्सव मनाया और इन्द्र ने ताण्डव नृत्य किया। साथ ही, बालक की देवोपुनीत सर्व व्यवस्था कर सभी देव अपने-अपने स्थान को चले गए।

जन्म होते ही राजा सिद्धार्थ के धन, वैभव, ऐश्वर्य, सुखशांति, आनंद में वृद्धि होने लगी इस कारण उनका नाम वर्द्धमान रखा गया।

संजय-विजय नाम के दो मुनिराजों को तत्त्वार्थ के विषय में कुछ शंका थी, उस शंका का राजकुमार महावीर के दर्शन मात्र से ही समाधान हो गया तब उन मुनियों ने आपका नाम सन्मति रख दिया।

मदोन्मत्त हाथी को राजकुमार वर्द्धमान ने एक क्षण में वश में कर लिया तब सबने मिलकर आपका नाम वीर रख दिया।

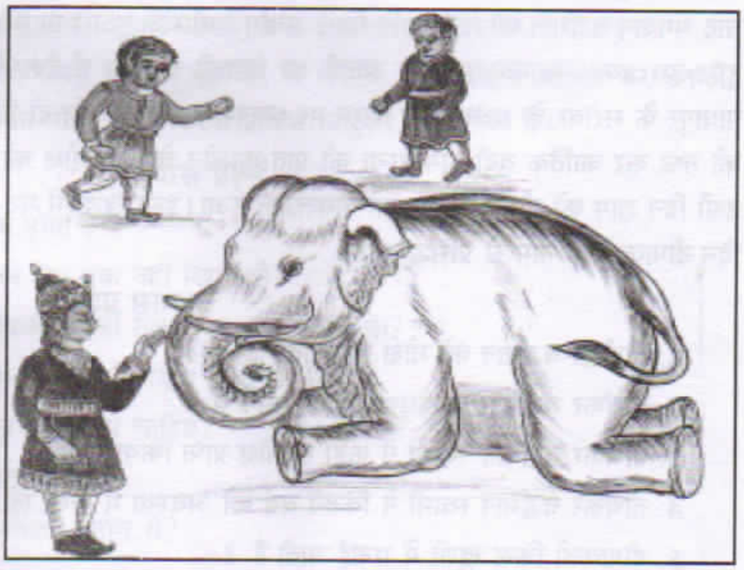

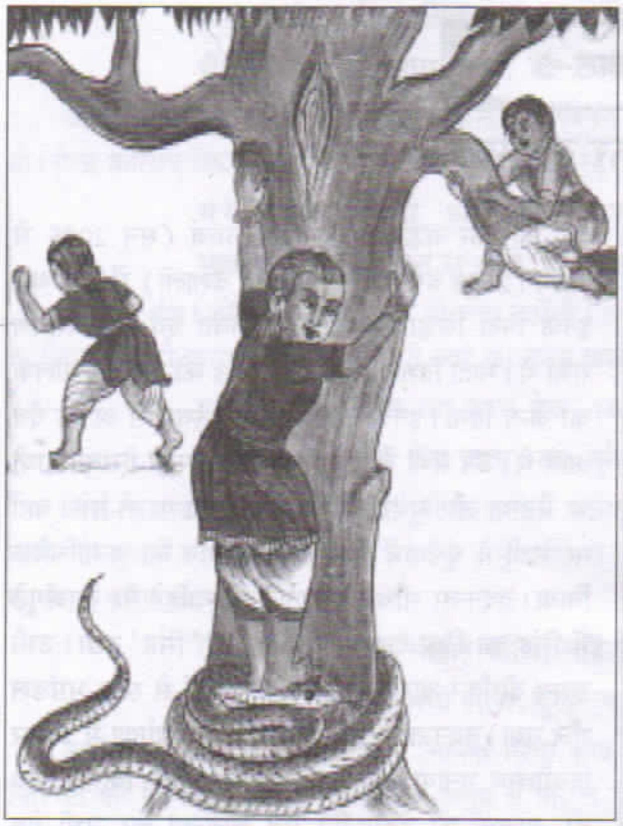

देव ने परीक्षा करने के लिये भयंकर नाग का रूप धारण कर लिया। निर्भय वर्द्धमान उसके फण पर पैर रखकर उतरे और उसे घुमाकर निर्मद कर दिया, तब देव ने प्रकट हो नमस्कार करके महावीर नाम रख दिया।

देव ने परीक्षा करने के लिये अप्सराओं को भेजकर, हर प्रकार से तप से डिगाना चाहा किन्तु महावीर सुमेरु की तरह अडिग साधना में तल्लीन रहे। तब देव ने आपका नाम अतिवीर रख दिया।

आपके शरीर का रंग तपे हुए स्वर्ण के समान था और शरीर की ऊँचाई 7 हाथ थी। कुल आयु 72 वर्ष थी। आपने तीस वर्ष की अल्पायु में ही बाल ब्रह्मचारी रहते हुए मुनि दीक्षा ले ली और सर्व परिग्रह का त्याग कर कठोर साधना करने लगे। आप जंगलों में ही रहते थे। आहार के लिये दिन में एक ही बार निकलते थे और श्रावकों के यहाँ अपने करपात्र (हाथों) में ही शुद्ध आहार लेते थे। कई दिनों की तपस्या के बाद एक दिन आपको केवलज्ञान हुआ जिससे आपको सभी पदार्थ एक साथ ही प्रत्यक्ष दिखने लगे। उस समय इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने मणिमयी समवशरण की रचना की। उसमें क्रमानुसार सभी मुनि, आर्यिका, देव, मनुष्य, तिर्यंच आदि बैठे थे। केवलज्ञान होने के छियासठ (66) दिन बाद भगवान् वर्द्धमान की दिव्यध्वनि खिरी अर्थात् धर्मोपदेश हुआ। महावीर स्वामी के प्रमुख गणधर गौतम स्वामी हुए। इस प्रकार भगवान् महावीर स्वामी का केवली अवस्था में देश-देश में धर्मोपदेश हुआ। तदनन्तर आप पावापुर के सरोवर के मध्य स्थित शिला पर ध्यानमग्न हो गये और दो दिन कठोर ध्यान साधना से समस्त कर्मों को नष्ट कर कार्तिक वदी अमावस्या की प्रातःकालीन वेला में मोक्ष को प्राप्त कर लिया अर्थात् सिद्ध हो गये। उसी दिन शाम को गौतम गणधर को केवलज्ञान हुआ। इसी खुशी में घर-घर दीप जलाये गए। उसी दिन से वह दिन दीपावली के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

अभ्यास प्रश्न

1. तीर्थंकर वर्द्धमान को मोक्ष किस दिन हुआ ?
2. तीर्थंकर वर्द्धमान के प्रमुख गणधर कौन थे ?
3. तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी ने कहाँ से मोक्ष प्राप्त किया?
4. तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी ने कितने वर्ष की अवस्था में दीक्षा ली?
5. दीपावली किस खुशी में मनाई जाती है ?

पाठ-6

वीर शासन जयन्ती

जैन शास्त्रों के अनुसार नये वर्ष का प्रारम्भ श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को होता है। युग का प्रारम्भ अथवा उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी रूप कालों का आरम्भ इसी तिथि से होता है। युग की समाप्ति आषाढ़ पूर्णिमा को होती है। पश्चात् श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को युग आरम्भ हुआ करता है।

भगवान् महावीर, केवलज्ञान होने के बाद 66 दिन तक मौन विहार करते हुए राजगृही में आये। नियमानुसार तो जहाँ केवलज्ञान प्राप्त होता है, वहाँ तत्काल तीर्थंकर की दिव्यध्वनि खिरने लगती है। लेकिन यहाँ गणधर के अभाव होने से ऐसा नहीं हुआ। आषाढ़ की पूर्णिमा के दिन महातेजस्वी विप्रश्रेष्ठ इन्द्रभूति गौतम, अग्निभूति, वायुभूति तथा कौण्डेय आदि पण्डित इन्द्र की प्रेरणा से भगवान् महावीर के समवशरण में आये। वे सभी पण्डित अपने-अपने 500-500 शिष्यों से सहित थे। जिन्होंने धर्म का वास्तविक स्वरूप समझने के बाद वस्त्रादि का त्याग कर संयम धारण कर लिया। उसी समय राजा चेटक की पुत्री चन्दना एक धवल वस्त्र धारण कर आर्यिकाओं में प्रमुख हो गई। राजा श्रेणिक भी अपनी चतुरङ्गिणी सेना के साथ समवशरण में पहुँचा और जिनेन्द्र देव को नमस्कार किया।

तब वर्द्धमान प्रभु ने श्रावणमास के कृष्णपक्ष की प्रतिपदा तिथि को प्रातःकाल के समय अभिजित नक्षत्र में दिव्यध्वनि के द्वारा शासन परम्परा चलाने के लिए उपदेश दिया। इस प्रमाण के अनुसार श्रावणकृष्ण प्रतिपदा को अभिजित नक्षत्र के होने पर ही वीरशासन जयन्ती सम्पन्न की जाती है।

भगवान् महावीर की दिव्यध्वनि अनक्षरी, दुन्दुभि के समान गम्भीर तथा एक योजन तक फैलने वाली थी। भगवान् महावीर ने ग्यारह अंग का, चौदहपूर्वों का, सप्ततत्त्व और नवपदार्थों का वर्णन किया। इस प्रकार भगवान् महावीर की वाणी वीतरागता से ओतप्रोत थी। उनकी वाणी सर्वाङ्ग आत्मप्रदेशों से निकलती थी। वह वाणी निरक्षरी एवं ओंकार रूप थी, फिर भी सभी प्राणी अपनी-अपनी भाषा में समझ लेते थे।

प्रतिवर्ष वीरशासन जयन्ती को मनाते समय भगवान् महावीर के संदेशों को हृदय में अंकित कर उनकी वाणी का घर-घर में प्रचार-प्रसार करने का सतत प्रयत्न करना प्रत्येक सत्पुरुष का कर्त्तव्य है।

अभ्यास प्रश्न

1. युग का प्रारम्भ व अंत कब-कब होता है?
2. भगवान् महावीर की वाणी कितने दिन तक नहीं खिरी थी?
3. भगवान् महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि नहीं खिरने का क्या कारण था?
4. भगवान् महावीर स्वामी की प्रथम दिव्यध्वनि किस तिथि पर खिरी?
5. वीरशासन जयन्ती पर किसका प्रचार करना चाहिए?
6. गुरुपूर्णिमा मनाने का क्या अभिप्राय है?
7. गौतम गणधर आदि के कितने-कितने शिष्य थे?

पाठ–7

षट्‌लेश्या

कषाय और योग से अनुरंजित आत्मा के परिणामों को लेश्या कहते हैं। मूलतः लेश्या के दो भेद हैं– द्रव्यलेश्या तथा भावलेश्या।

शरीर के रंग को द्रव्यलेश्या एवं कर्म सहित जीव के परिणाम विशेष को भाव लेश्या कहते हैं। वैमानिक देवों और नारकियों में द्रव्य व भावलेश्या समान होती है परन्तु अन्य जीवों में इनकी समानता का कोई नियम नहीं है। द्रव्यलेश्या जीवनपर्यन्त एक ही रहती है पर भावलेश्या परिणामों के अनुसार परिवर्तित होती रहती है।

सामान्यतः भावलेश्या के छह भेद हैं–कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल। इनमें से आदि की तीन अशुभ लेश्या और बाद की तीन शुभ लेश्या हैं। अशुभ लेश्याओं से प्रभावित व्यक्ति के मन में पाप क्रिया के भाव जागृत होते हैं। शुभलेश्याओं से व्यक्ति के मन में सन्तोष, सौहार्द, अहिंसा, दया, मैत्री, शान्ति आदि पवित्र भावनाओं का विकास होता है। लेश्याओं के लक्षण इस प्रकार हैं–

(1) **कृष्ण लेश्या**–सदा बुरे विचार करना, बात–बात में क्रोध करना, दूसरों से घृणा करना, दया धर्म से रहित होना, बैरभाव रखना, सदा शोक संतप्त रहना आदि कृष्ण लेश्या वालों के लक्षण हैं। अर्थात् अत्यन्त तीव्रता (WORST) परिणाम।

(2) **नील लेश्या**–आलसी, बुद्धिहीन, कामी, भोगी, डरपोक, ठग, सदा मान सम्मान पाने के भाव आदि नील लेश्या वालों के लक्षण हैं। अर्थात् तीव्रतम (WORSE) परिणाम।

(3) **कापोत लेश्या**– परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, बात–बात में नाराज होना, शोकाकुल होना आदि कापोत लेश्या वालों के लक्षण हैं। अर्थात् तीव्र (BAD) परिणाम।

(4) **पीतलेश्या**–दयालु, विवेकी, संतोषी, तीव्र बुद्धिमान् होना, सबसे प्रेम करना आदि पीतलेश्या वालों के लक्षण हैं। अर्थात् मंद अथवा (GOOD) परिणाम।

(5) **पद्म लेश्या**–सदा प्रसन्न रहना, सदा परोपकार करना, देवपूजा–दानादि करना, त्याग के भाव रखना आदि पद्म लेश्या वालों के लक्षण हैं। मंदतर अथवा (BETTER) परिणाम।

(6) **शुक्ल लेश्या**– राग द्वेष से रहित होना, प्राणी मात्र के प्रति स्नेह भाव रखना, शोक–निंदा आदि से रहित होना शुक्ल लेश्या वालों के लक्षण हैं। अर्थात् मंदतम अथवा (BEST) परिणाम।

लेश्याओं के स्वरूप को समझने के लिए एक उदाहरण प्रचलित है-छह मित्र एक बगीचे में गये। वहाँ उन्होंने आम से लदा हुआ वृक्ष देखा, पहला मित्र बोला-चलो इस वृक्ष को उखाड डालें और पेट भर आम खायें। दूसरे मित्र ने कहा-वृक्षों को उखाडने से क्या प्रयोजन, केवल बड़ी-बड़ी शाखाओं को काटने से ही हमारा काम हो जायेगा। तीसरे ने कहा-यह भी उचित नहीं है, हमारा काम तो छोटी-छोटी टहनियों के काटने से ही हो जायेगा। चौथे मित्र ने कहा-टहनियों को तोड़ने से क्या लाभ, केवल गुच्छों को तोड़ना ही पर्याप्त है। पाँचवा मित्र बोला-हमें गुच्छों से क्या प्रयोजन, केवल पके फल तोड़ लेना ही अच्छा है। तब अन्त में छठा मित्र गम्भीर होकर बोला-आप सब क्या सोच रहे हैं। हमें जितने फल चाहिए उतने तो नीचे ही पड़े हैं, फिर व्यर्थ में फल तोड़ने से क्या लाभ? इस दृष्टान्त से लेश्याओं का स्वरूप समझ में आ जाता है। पहले मित्र के परिणाम कृष्ण एवं छठे मित्र के परिणाम शुक्ल लेश्या के हैं। यह उदाहरण केवल परिणामों की तारतम्यता का सूचक है।

गुणस्थान की अपेक्षा-चौथे गुणस्थान तक छहों लेश्या होती हैं। पाँचवें से सातवें गुणस्थान तक तीन शुभ लेश्या ही होती हैं इससे ऊपर तेरहवें गुणस्थान तक मात्र एक शुक्ल लेश्या होती है। कषाय व योग का अभाव होने से अयोग केवली और मुक्तजीवों के लेश्या नहीं होती है।

गति की अपेक्षा-देवगति में पीत, पद्म, शुक्ल तीन शुभ लेश्यायें ही होती हैं। किन्तु जब वे अपर्याप्तक होते हैं उस समय भवनत्रिकों में तीन अशुभ लेश्यायें भी हो सकती हैं। मनुष्यों में छहों लेश्यायें पायी जाती हैं। तिर्यंचों में एकेन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के सभी जीवों के नियमतः तीन अशुभ लेश्यायें होती हैं और संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के छहों लेश्यायें सम्भव हैं।

देवों और नारकियों की भावलेश्या आयु पर्यन्त एक ही होती है, जबकि मनुष्यों और तिर्यंचों की भाव लेश्या अन्तर्मुहूर्त में बदलती रहती है।

अभ्यास प्रश्न

1. लेश्या किसे कहते हैं?
2. लेश्या के मूलतः कितने भेद हैं? स्पष्ट कीजिए।
3. लेश्या के स्वरूप को दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट कीजिए।

पाठ-8

जीवंधर स्वामी

एक समय भरतक्षेत्र में हेमानंद नामक एक देश था,उसकी राजधानी का नाम राजपुरी था। वहाँ राजा सत्यंधर राज्य किया करते थे। उनकी रानी का नाम विजया था। एक दिन रानी विजया ने रात्रि के अन्तिम पहर में तीन स्वप्न देखे। प्रात: होते ही रानी ने षट् आवश्यक क्रियाओं से निवृत्त हो, राजा के पास जाकर उन स्वप्नों का फल पूछा तब राजा ने कहा :-

स्वप्न 1. अशोकवृक्ष नष्ट हो रहा है।

फल – महाराज ने पहले स्वप्न का अशुभ फल समझकर कुछ नहीं कहा क्योंकि यह स्वप्न उनकी मृत्यु का सूचक था।

स्वप्न 2. मुकुट सहित नया अशोक वृक्ष।

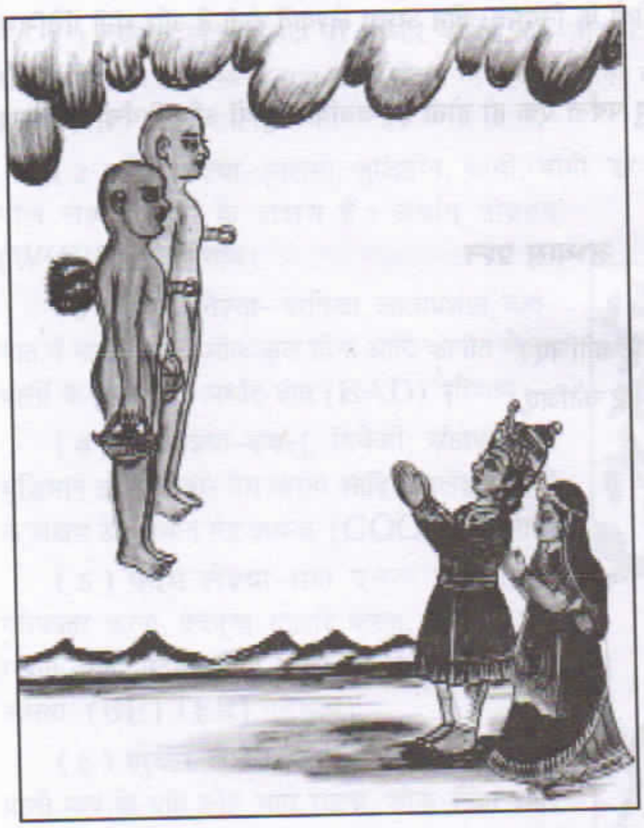

फल – आपके एक तेजस्वी पुत्र होने वाला है।

स्वप्न 3. आठ सुन्दर मालायें।

फल –उसकी आठ सुन्दर पत्नियाँ होंगी।

दोनों दम्पत्ती सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। कुछ ही दिनों में रानी गर्भवती हो गई। तब राजा ने मृत्यु को निकट जानकर अपनी रानी व पुत्र की रक्षा के लिये एक मयूराकृति का विमान बनाया और रानी को उड़ना सिखाया। एक दिन मंत्री काष्ठांगार ने राज्य शासन के लालच में राजा से युद्ध करने की घोषणा की। तब राजा ने शीघ्र ही रानी को विमान में बिठाकर उड़ा दिया और उसने प्रजा के हित एवं आत्मकल्याण के लिये राजपाट छोड़कर, जिनदीक्षा धारण कर ली और सल्लेखना पूर्वक मरण कर देवपर्याय को प्राप्त किया।

रानी विजया का विमान राजगृही के ही श्मशान में जा गिरा। वहीं पर रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया। तब एक देवी धाय का रूप धारण कर वहाँ रानी की सहायतार्थ प्रकट हुई। जिस दिन रानी के पुत्र हुआ उसी दिन उस नगर के सेठ गन्धोत्कट के

यहाँ भी पुत्र जन्मा और उसी समय मृत्यु को प्राप्त हो गया। जब वह अन्त्येष्टि के लिये श्मशान में आया तो उसे विजया का पुत्र दिखाई दिया। सेठ जब उस पुत्र को घर ले जाने लगा, तब पेड़ के पीछे छिपी हुई विजया ने उसे 'जीव' शब्द कहकर आशीर्वाद दिया। सेठ ने जीव शब्द सुनकर शिशु का नाम जीवन्धर रख दिया। विजया को देवी दण्डक वन में रहने वाले तपस्वियों के आश्रम में ले गई।

कुछ दिन बाद सेठ की पत्नी सुनन्दा ने पुनः एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम नन्दाढ्य रखा गया। उसका पालन पोषण भी जीवंधर के साथ होने लगा। जीवंधर ने प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद, सर्व विद्या विशारद नामक पाठशाला में आर्यनन्दि से विद्वत्ता प्राप्त की। तत्पश्चात् आर्यनन्दि ने जीवंधर को शिक्षा देकर स्वयं आत्मकल्याण हेतु जिनदीक्षा धारण कर ली।

जीवंधर का विवाह आठ सुन्दर कन्याओं के साथ हो गया।

एक बार जीवंधर अपने मित्रों के साथ क्रीड़ा स्थल पर पहुँचे,वहाँ ब्राह्मणों द्वारा रखी गयी हवन सामग्री को किसी कुत्ते ने जूठा कर दिया। तब क्रोधित ब्राह्मणों ने कुत्ते को मार-मार कर अधमरा सा कर दिया। जीवंधर ने उस छटपटाते हुये कुत्ते को देखा तो शीघ्र उसके पास जाकर बचाने का प्रयास करने लगे। परन्तु बहुत देर हो चुकी थी। तब अन्त में उन्होंने उसे णमोकार महामंत्र सुनाया, जिसके प्रभाव से वह कुत्ता स्वर्ग में यक्षों का अधिपति देव बन गया।

जीवंधर एक दिन विहार करते हुये दण्डक वन के तपस्वी आश्रम में जा पहुँचे। वहाँ अपनी माता विजया को देखते ही प्रसन्न हो गए। माता ने जीवंधर को आशीर्वाद देने के बाद अपने पिता का राज्य पुनः प्राप्त करने की प्रेरणा दी। जिसके फलस्वरूप उन्होंने काष्ठागार को मार भगाया। जिससे अन्य सभी राजाओं ने जीवंधर की अधीनता स्वीकार कर ली। जब राजा जीवंधर कुशलता से शासन करने लगे तब एक दिन उनकी दोनों माताओं विजया और सुनन्दा ने पद्म नाम की आर्यिका से दीक्षा ले ली। तीस वर्ष तक कुशल शासन करने के बाद एक दिन बंदर की क्रीड़ा को देख उन्हें वैराग्य हो गया तब गंधर्वदत्ता के पुत्र को राज्य सौंपकर स्वयं आठों रानियों के साथ श्री महावीर स्वामी के समवशरण में जा पहुँचे। वहाँ भगवान् की स्तुति कर, उनकी दिव्यध्वनि का रसास्वादन किया, फिर गणधर देव को नमस्कार कर जिनदीक्षा धारण कर ली और अपने कठोर तपश्चरण के प्रभाव से आठों कर्मों को नष्ट कर सिद्धत्व को प्राप्त किया।

अभ्यास प्रश्न

1. जीवंधर स्वामी की माता ने कितने स्वप्न देखे थे एवं उनका क्या फल था?
2. जीवंधर स्वामी ने किसे णमोकार मंत्र सुनाया था और उसका क्या फल हुआ था?
3. जीवंधर स्वामी के माता-पिता का नाम बताइए।
4. जीवंधर स्वामी को किस घटना से वैराग्य हुआ था?

पाठ-9
कर्म

कर्म का लक्षण

जो आत्मा का असली स्वभाव प्रकट नहीं होने देता, उसे कर्म कहते हैं। जैसे बहुत सी धूल या मिट्टी उड़कर सूर्य के प्रकाश को ढक देती है, उसी प्रकार लोक में सब जगह भरे हुये जो पुद्‌गल परमाणु, राग-द्वेषादि के निमित्त से, आत्मा के प्रदेशों के साथ मिलकर आत्मा का स्वभाव ढक देते हैं, उन पुद्‌गल परमाणुओं को कर्म कहते हैं।

रागद्वेष के निमित्त से उन कर्मों में सुख-दुःख आदि देने की शक्ति भी हो जाती है।

कर्म के भेद-ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये आठ कर्म हैं।

इनमें से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तरायकर्म घातिया तथा शेष कर्म को अघातिया कहते हैं।

1. ज्ञानावरण कर्म

जो कर्म आत्मा के ज्ञानगुण को ढकता है (प्रकट नहीं होने देता) उसे ज्ञानावरण कर्म कहते हैं।

दृष्टान्त-यदि किसी मूर्ति पर पर्दा पड़ा हो तो जिस तरह उसका रूप नहीं दिखता, उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म आत्मा के ज्ञानगुण को ढक देता है, प्रकट नहीं होने देता। जैसे-सुरेश अपना पाठ खूब याद करता है, परन्तु उसे याद नहीं होता, इसमें सुरेश के ज्ञानावरण कर्म का उदय समझना चाहिये।

बन्ध के कारण-ज्ञान के साधनों में विघ्न डालना, पुस्तक फाड़ देना, छिपा देना, किसी को नहीं बताना, अपने ज्ञान का गर्व करना, जिनवाणी में संशय करना, अर्थ का अनर्थ करना, गुरु की निन्दा करना, झूठा उपदेश देना आदि कार्यों से ज्ञानावरणकर्म का बन्ध होता है। इनसे उल्टे कार्य करने से ज्ञान का विकास होता है।

2. दर्शनावरण कर्म

जो कर्म आत्मा के दर्शन गुण को ढकता है (प्रकट नहीं होने देता) उसे दर्शनावरण कर्म कहते हैं।

दृष्टान्त-जिस प्रकार कोई पहरेदार राजा के दर्शन नहीं होने देता, उसी प्रकार दर्शनावरण कर्म आत्मा को पदार्थों का दर्शन नहीं होने देता। जैसे-रमेश मन्दिर दर्शन के लिये गया, किन्तु ताला लगा पाया, इसमें रमेश के दर्शनावरण कर्म का उदय समझना चाहिये।

बन्ध के कारण-जिनदर्शन में विघ्न डालना, किसी की आँख फोड़ना, दिन में शयन करना, मुनियों को देखकर घृणा करना, अपनी दृष्टि का गर्व करना इत्यादि कार्यों से दर्शनावरण कर्म का बन्ध होता है।

3. वेदनीय कर्म

जो आत्मा को सुख-दुःख देता है और अव्याबाध सुख (बाधा का अभावरूप) गुण का घात करता है, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं- असातावेदनीय और सातावेदनीय।

दृष्टान्त-जिस प्रकार शहद-लपेटी तलवार की धार चाटने से सुख-दुःख दोनों होते हैं अर्थात् शहद मीठा लगने से सुख होता है और तलवार द्वारा जीभ कट जाने से दुःख होता है, वैसे ही वेदनीयकर्म सुख-दुःख दोनों देता है।

बन्ध के कारण- अपने व दूसरे के विषय में दुःख करना, शोक करना, पश्चाताप करना, रोना, मारना, पशुवध करना, बलि चढ़ाना आदि कार्यों से असातावेदनीय कर्म का बन्ध होता है।

दया करना, दान करना, संयम पालना, लोभ न करना, वात्सल्य रखना, वैय्यावृत्ति करना, व्रत पालन करना, प्रभावना करना आदि कार्यों से सातावेदनीय कर्म का बन्ध होता है।

4. मोहनीय कर्म

जो कर्म आत्मा के सम्यक्त्व और चारित्र गुण का घात करता है अथवा जिसके उदय से यह जीव स्वभाव को भूलकर अपने से जुदा पर वस्तुओं में लुभा जाता है, उसे मोहनीयकर्म कहते हैं।

दृष्टान्त-जिस प्रकार शराब प्राणी को भुला देती है, उसी प्रकार मोहनीय कर्म आत्मा को मोहित कर देता है। इस कर्म के निमित्त से प्राणी पर पदार्थों में इष्ट-अनिष्ट की कल्पना कर इष्ट और अनिष्ट रूप आचरण करने लगता है।

क्रोध, मान, माया, लोभ आदि मोहनीय कर्म के उदय से ही होते हैं। जैसे-प्रकाश ने क्रोध में आकर जिनेश को मार दिया, विजय ने लोभ में आकर राजकुमार को लूट लिया। इसमें प्रकाश और विजय के मोहनीय कर्म का उदय समझना चाहिये।

बन्ध के कारण-सच्चे देव, शास्त्र, गुरु और धर्म में दोष लगाना, उनके स्वरूप को बदलना, मिथ्या देव, शास्त्र, गुरु की प्रशंसा या सेवा करना, आगम की मर्यादा का उल्लंघन करना, क्रोधादि कषायें करना इत्यादि कार्यों से मोहनीय कर्म का बन्ध होता है।

5. आयु कर्म

जो कर्म आत्मा को नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव में से किसी एक के शरीर में रोके रखता है अथवा जिस कर्म के उदय से जीव को किसी पर्याय में किसी निश्चित (नियत) समय तक रहना पड़ता है, उसे आयु कर्म कहते हैं।

दृष्टान्त-जिस प्रकार सांकल में बंधा हुआ या काठ में फसा हुआ मनुष्य उसके न हटने तक दूसरी जगह नहीं जा सकता, उसी प्रकार आयुकर्म भी प्राणी को मनुष्य आदि के शरीर में रोके रखता है। जब तक एक शरीर की आयु पूरी नहीं हो जाती, तब तक प्राणी दूसरे शरीर में नहीं जा सकता। जैसे-हमारा जीव मनुष्य शरीर में रुका हुआ है और गाय का जीव तिर्यंच के शरीर में रुका हुआ है। इसमें हमारे और गाय के क्रम से मनुष्य और तिर्यंच आयु कर्म का उदय समझना चाहिये।

बन्ध के कारण व भेद-बहुत हिंसा करना, बहुत आरम्भ करना, बहुत परिग्रह रखना आदि से नरकायु का बन्ध होता है। मायाचारी करने से तिर्यंचायु का बंध होता है। थोड़ा आरम्भ और थोड़ा परिग्रह रखने आदि से मनुष्यायु का बन्ध होता है। सम्यक्त्व प्राप्ति, व्रतपालन करना, शान्तिपूर्वक दुःख सहना आदि से देव आयु का बन्ध होता है।

6. नाम कर्म

जो कर्म प्राणियों को तरह-तरह के शरीर, अंगोपांग, आकार और रूप-रूपान्तर स्वरूप परिणमाता (करता या बदलता) है, उसे नामकर्म कहते हैं।

दृष्टान्त-जिस प्रकार कोई चित्रकार अनेक प्रकार के चित्र बनाता है, कोई मनुष्य का, कोई बैल का, किसी का हाथ लम्बा आदि। इसी प्रकार नामकर्म इस प्राणी को कभी घोड़ा, कभी कुबड़ा, कभी गोरा आदि अनेक रूप परिणमाता है। हमारे आँख, कान, नाक, शरीर आदि सब नाम कर्म के उदय से ही बने हैं।

शुभनामकर्म से शरीर के अंग सुंदर एवं सुडौल होते हैं जबकि अशुभ नामकर्म से असुंदर एवं बेडौल होते हैं।

बन्ध के कारण-मन, वचन, काय को सरल रखना, धर्मात्मा को देख खुश होना, अंगोपांग का छेद नहीं करना, षोडशकारण भावना भाना आदि कार्यों से शुभ नामकर्म का बन्ध होता है।

त्रियोग को कुटिल रखना, दूसरे को देखकर हंसना, धर्मात्माओं के साथ विसंवाद करना, किसी की नकल करना, आपस में लड़ना और किसी का बुरा सोचना आदि कार्यों से अशुभ नाम कर्म का बन्ध होता है।

7. गोत्र कर्म

जिस कर्म के उदय से प्राणी ऊँच या नीच कुल को प्राप्त होता है, उसे गोत्र कर्म कहते हैं।

दृष्टान्त-जिस प्रकार कुम्हार छोटे या बड़े बर्तन बनाता है, उसी प्रकार गोत्रकर्म इस जीव को ऊँचा या नीचा कुल (गोत्र, घराना) प्राप्त कराता है। उच्चगोत्र के उदय से लोकमान्य कुल की प्राप्ति होती है तथा नीच गोत्र कर्म के उदय से लोक निन्द्य कुल की प्राप्ति होती है।

बन्ध के कारण-दूसरे की निन्दा करना, अपनी प्रशंसा करना, दूसरे के गुणों को ढाँकना, अपने गैर मौजूद गुणों को प्रकट करना तथा घमंड करना आदि कार्यों से नीच गोत्र कर्म का बन्ध होता है। दूसरे की प्रशंसा करना, अपनी निन्दा करना, दूसरे के दोषों को ढांकना, अपने दोषों को प्रकट करना आदि कार्यों से उच्च गोत्र कर्म का बन्ध होता है।

8. अन्तराय कर्म

जो कर्म दान, लाभ, भोग, उपभोग या शक्ति में विघ्न डालता है, उसे अन्तराय कर्म कहते हैं।

दृष्टान्त-जिस प्रकार किसी सेठ ने एक पाठशाला को दस हजार रुपया देने की आज्ञा दी, किन्तु मुनीम कुछ गड़बड़ करके उन रुपयों को न दिला कर विघ्न कर देता है, उसी प्रकार अन्तराय कर्म कार्यों में विघ्न किया करता है। जैसे-अजित कुमार लड्डू खा रहा था, कुत्ता लड्डू छीन ले गया, तो अजित के अन्तरायकर्म का उदय समझना चाहिये।

बन्ध के कारण-दान देते को रोक देना, आश्रितों को धर्मसाधन नहीं करने देना, दूसरे की भोग वस्तु को बिगाड़ देना, किसी को हानि पहुँचाना, किसी के सामर्थ्य को बिगाड़ना आदि कार्यों से अन्तराय कर्म का बन्ध होता है।

सबसे खराब कर्म

मोहनीय कर्म से ही दूसरे कर्मों का बंध होता है और इसके नष्ट हुये बिना दूसरे कर्मों का नाश भी नहीं होता। इसकी स्थिति भी सभी कर्मों से अधिक है। इसलिये मोहनीय कर्म ही सबसे खराब कर्म है।

कर्म रहित जीव

अरिहन्त भगवान् के चार घातिया कर्म नहीं होते, सिद्ध परमेष्ठी के आठों कर्म नहीं होते। एक प्राणी के एक पर्याय में एक ही प्रकार के आयु कर्म का बंध होता है।

अभ्यास प्रश्न

1. कर्म किसे कहते हैं? इनमें फल देने की शक्ति कैसे पैदा होती है?
2. सबसे बुरा कर्म कौन सा है और तुम्हारे पास इस समय कितने कर्म हैं?

3. बताओ इनके किस कर्म का उदय है-

(अ) विनय लड्डू खा रहा था, कुत्ता आकर लड्डू छीन ले गया।

(ब) सुरेश अपना पाठ खूब याद करता है परन्तु उसे याद नहीं होता।

(स) मेश मन्दिर गया परन्तु ताला लगा पाया, अतः दर्शन नहीं कर सका।

(द) देवदत्त बहुत सुन्दर है और अंजना सुरीला गाती है।

(य) मोहन दिन भर सोता रहता है।

4. बताओ इनके किस-किस कर्म का बन्ध हुआ है-

(क) मोहन बड़ा मानी है, क्योंकि गुरु का अपमान किया।

(ख) मदन ने सुरेश की पुस्तक फाड़ दी।

(ग) सुरेश फेल हो गया, अतः बहुत रोया।

(घ) अखिलेश ने सुरेश की चुगली की।

पाठ-10

ऐतिहासिक जैन महापुरुष

अहिंसा प्रधान जैन शासन की निर्दोष परंपरा का निर्वाह करते हुए तथा जिन धर्म का पालन करते हुए अनेक वीर राजा, रानियों, मंत्रियों, सेनापतियों ने प्रजा का पालन/संरक्षण किया। देश की रक्षा हेतु युद्ध किये। समय-समय पर देश के लिए आवश्यकतानुसार अपनी निजी सम्पदा को समर्पित किया एवं जिनालय, साधु-वसतिका निर्माण तथा ग्रन्थ आदि का निर्माण कराकर जिन शासन की प्रभावना में योगदान दिया। ऐसे ही कुछ महापुरुषों का संक्षिप्त जीवन-वृत्त यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य और मन्त्रीश्वर चाणक्य

ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के अंतिम पाद में शक्तिशाली नन्दवंश का उच्छेद कर मौर्य वंश की स्थापना करने वाले ये दोनों प्रधान नायक थे। जो गुरु-शिष्य थे। चाणक्य राजनीति विद्या-विलक्षण एवं नीति विशारद ब्राह्मण पंडित था। चन्द्रगुप्त परम पराक्रमी एवं तेजस्वी क्षत्रिय वीर था। इस विरल मणि-कांचन संयोग को सुगन्धित करने वाला अन्य सुयोग यह था कि वह दोनों ही अपने-अपने कुल परम्परा तथा व्यक्तिगत आस्था की दृष्टि से जैनधर्म के प्रबुद्ध अनुयायी थे।

चाणक्य का जन्म ईसा पूर्व 375 के लगभग चणय नामक ग्राम में हुआ था। माता का नाम चणेश्वरी एवं पिता का नाम चणक था। चणक के पुत्र होने से उनका नाम चाणक्य हुआ। ये ब्राह्मण थे किन्तु धर्म की दृष्टि से पापभीरू जैन श्रावक थे। शिशु चाणक्य के मुंह में जन्म से ही दाँत थे, यह देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। इस लक्षण को देख भविष्य वक्ता ने इसे एक शक्तिशाली नरेश होना बताया। ब्राह्मण चणक श्रावकोचित क्रिया करने वाला था। संतोषी वृत्ति का धार्मिक व्यक्ति था, वैसे ही उनकी सहधर्मिणी थी। राज्य वैभव को वे लोग पाप और पाप का कारण समझते थे। अतएव चणक ने शिशु के दाँत उखड़वा डाले। इस पर साधुओं ने भविष्य वाणी की कि अब वह स्वयं राजा नहीं बनेगा, किन्तु अन्य व्यक्ति के माध्यम से राज्य शक्ति का उपभोग और संचालन करेगा।

बड़े होने पर तात्कालिक ज्ञान केन्द्र तक्षशिला तथा उसके आसपास निवास करने वाले आचार्यों से चाणक्य ने शिक्षण प्राप्त किया। तीक्ष्ण बुद्धिमान् होने से समस्त विद्याओं एवं शास्त्रों में वह पारंगत हो गया। धनहीनता से पीड़ित चाणक्य पाटलिपुत्र के राजा महापद्म के पास पहुँचा। अपनी विद्वत्ता से उसने राजा को प्रभावित किया एवं दान विभाग के प्रमुख का पद प्राप्त किया। किन्हीं कारणों से राजपुत्र के द्वारा किये गये अपमान से क्षुब्ध एवं कुपित चाणक्य ने भरी सभा में नंद वंश के समूल नाश की प्रतिज्ञा की और पाटलिपुत्र का परित्याग कर दिया। घूमते घूमते वह मयूर ग्राम पहुँचा, वहाँ के मुखिया की इकलौती लाड़ली पुत्री गर्भवती थी, उसी समय उसे चन्द्रपान का विलक्षण दोहला उत्पन्न हुआ। जिसके कारण घर के लोग चिंतित थे। चाणक्य ने उसके दोहले को शांत करने का आश्वासन दिया और यह शर्त रखी कि यदि लड़का हुआ तो उस पर मेरा अधिकार होगा। जब चाहे उसे ले जा सकूंगा हूँ। अन्य कोई उपाय न देखकर शर्त मान ली गई, तब चाणक्य ने एक थाली में जल भरवाकर उसमें पूर्णचन्द्र को प्रतिबिम्बित कर गर्भिणी को इस चतुराई से पिला दिया कि उसे विश्वास हो गया कि उसने चन्द्रपान किया। कुछ दिनों बाद मुखिया की पुत्री ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया जिसका नाम चन्द्रगुप्त रखा गया। यह घटना ईसा पूर्व 345 के आसपास की है। विशाल साम्राज्य के स्वामी नंद वंश को नष्ट करना हँसी खेल नहीं

था। चाणक्य यह जानता था। फिर भी धुन का पक्का था अतएव धैर्य के साथ अपनी तैयारी में संलग्न हो गया। अपने कई वर्ष उसने धातु विद्या की सिद्धि एवं स्वर्ण आदि धन एकत्र करने में व्यतीत किये। आठ-दस वर्ष बाद पुनः चाणक्य उसी मयूर ग्राम में आया। वहाँ पर उसने खेलते हुए कुछ बालक देखे। कौतुक वश वह उनके खेल को देखने लगा। राजा एक बालक के अभिनय से वह अत्यन्त आकृष्ट हुआ। पास जाकर उसने उस बालक को राजा बनने योग्य लक्षणों से युक्त पाया, तब मित्रों से उसका पता पूछने पर ज्ञात हुआ कि यह तो वही मुखिया का नाती चन्द्रगुप्त है। तब अत्यन्त प्रसन्न होता हुआ माता-पिता को अपने वचनों का स्मरण करा राजा बनाने के उद्देश्य वश उसे ले गया। कई वर्षों तक उसने चंद्रगुप्त को विविध अस्त्र-शस्त्रों के संचालन, युद्ध विद्या, राजनीति तथा अन्य उपयोगी ज्ञान-विज्ञान एवं शास्त्रों की समुचित शिक्षा दी एवं धीरे-धीरे युवा वीर साथी जुटा लिये।

ई.पू. 325 के लगभग चाणक्य के पथ प्रदर्शन में चन्द्रगुप्त ने मगध राज्य की सीमा पर अपना एक छोटा सा स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। कुछ दिनों पश्चात् इसने छद्म भेष में नन्दों की राजधानी पाटलिपुत्र में प्रवेश कर आक्रमण कर दिया। चाणक्य के कूट कौशल के बाद भी नंदों की असीम सैन्य शक्ति के सम्मुख ये बुरी तरह पराजित हुए और जैसे-तैसे प्राण बचाकर भागे। एक बार घूमते हुए रात्रि में उन्होंने एक झोपड़े में बुढ़िया की डाट सुनी कि हे पुत्र तू भी चाणक्य के समान अधीर एवं मूर्ख है, जो गर्म-गर्म खिचड़ी को बीच से ही खा रहा है, हाथ न जलेगा तो क्या होगा। चाणक्य को समझ आयी कि सीधे राजधानी पर हमला बोल कर मैंने गलती की। फिर उन्होंने नंद साम्राज्य के सीमावर्ती प्रदेशों पर अधिकार करना प्रारम्भ किया। एक के पश्चात् एक ग्राम, नगर, गढ़ आदि छल-बल एवं कौशल से जैसे भी बना हस्तगत करते चले गये। चन्द्रगुप्त के पराक्रम, रणकौशल एवं सैन्य संचालन पटुता, चाणक्य की कूट नीति एवं सदैव सजग गिद्ध दृष्टि के परिणाम स्वरूप प्रायः सभी नन्दकुमार लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुए।

वृद्ध महाराज महापद्म चाणक्य को धर्म की दुहाई दे, सपरिवार सुरक्षित अन्यत्र चले गये। नंद दुहिता राजरानी सुप्रभा का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ हुआ और वह अग्रमहिषी बनी। इस प्रकार ई.पू. 317 में पाटलि पुत्र में नंदवंश का पतन और उसके स्थान पर मौर्य वंश की स्थापना हुई। व्यक्तिगत रूप से सम्राट चन्द्रगुप्त धार्मिक एवं साधु सन्तों का सम्मान करने वाला था। प्राचीन सिद्धान्त शास्त्र तिलोयपण्णत्ति में चंद्रगुप्त को क्षत्रिय कुलोत्पन्न मुकुटबद्ध माण्डलिक सम्राटों में अंतिम कहा गया है जिन्होंने दीक्षा लेकर अंतिम जीवन जैन मुनियों के रूप में व्यतीत किया। उनके गुरु आचार्य भद्रबाहु थे। जिन्होंने श्रवण बेलगोला में समाधिमरण ग्रहण किया। उसी स्थान के एक पर्वत पर कुछ वर्ष उपरांत चंद्रगुप्त मुनिराज ने सल्लेखना पूर्वक देह त्याग किया।

(लगभग 19 वर्ष राज्य भोग करने के पश्चात ईसा पूर्व 298 में आपने अपने पुत्र बिम्बसार को राज्य भार सौंपकर और उसे गुरु चाणक्य के ही अभिभावकत्व में छोड़, दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया) कुछ दिनों पश्चात चाणक्य भी मन्त्रित्व का भार अपने शिष्य राधागुप्त को सौंपकर मुनि दीक्षा लेकर तपश्चरण के लिए चले गये तथा अंत समय में सल्लेखना पूर्वक देह त्याग किया।

2. सम्राट खारवेल

कलिंग चक्रवर्ती सम्राट महामेघवाहन ऐल खारवेल दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व का सर्वाधिक शक्तिशाली, प्रतापी एवं दिग्विजयी नरेन्द्र था। साथ ही वह राजर्षि परम जिन भक्त भी था। अपने समय में उसने कलिंग देश को

भारत वर्ष की सर्वोपरि राज्य शक्ति बना दिया था तथा उसने लोक हित और जैन धर्म की प्रभावना के भी अनेक चिरस्मरणीय कार्य किये थे। वर्तमान में यही उड़ीसा है। जैनधर्म के साथ कलिंग देश का अत्यन्त प्राचीन सम्बन्ध रहा है। अठारहवें तीर्थंकर अरनाथ की प्रथम पारणा जिस रायपुर में हुई थी, उसकी पहचान महाभारत में उल्लेखित कलिंग देश की राजधानी राजपुर से की जाती है। ऐसा माना जाता है कि यहाँ तीर्थंकर पार्श्वनाथ व महावीर स्वामी का भी पदार्पण हुआ था। खारवेल का जन्म ईसा पूर्व 190 के लगभग हुआ था। पंद्रह वर्ष की आयु में उसे युवराज का पद प्राप्त हुआ और चौबीस वर्ष की आयु में राज्याभिषेक हुआ। दादा क्षेमराज के समक्ष ही पिता वृद्धिराज की मृत्यु हो गई थी। (ई. पू.-152) उपरांत यह नरेश कितने वर्ष और जीवित रहा तथा उसने क्या किया, यह जानने का कोई साधन उपलब्ध नहीं है। सम्राट खारवेल का विश्वश्रुत शिलालेख वर्तमान उड़ीसा राज्य के पुरी जिले के भुवनेश्वर से तीन मील दूर स्थित खण्डगिरि पर्वत के उदयगिरि नामक उत्तरी भाग पर बने हुए हाथी गुम्फा नामक विशाल एवं प्राचीन गुफा मंदिर के मुख एवं छत पर सत्रह पंक्तियों में लगभग 84 फीट के विस्तार में उत्कीर्ण है। लेख के प्रारम्भ में अरिहंतों एवं सर्व सिद्धों को नमस्कार किया है। शिलालेख के अनुसार राज्यकाल के तेरहवें वर्ष में इस राजर्षि ने सुपर्वत-विजय-चक्र में (प्रान्त) स्थित कुमारी पर्वत पर अपने राजभक्त प्रजाजनों द्वारा पूजे जाने के लिये उन अरिहंतों की पुण्य स्मृति में निषद्यकाएँ निर्माण करायी थीं जो निर्माण लाभ कर चुके थे। तपोधन मुनियों के आवास हेतु गुफायें बनवायी। स्वयं ने उपासक (श्रावक) के व्रत ग्रहण किये और अर्हन्मंदिर के निकट उसने एक विशाल मनोरम सभा मण्डप (अर्कासन गुम्फा) बनवाई। जिसके मध्य में एक बहुमूल्य रत्नजड़ित मानस्तम्भ स्थापित कराया। महामुनि सम्मेलन भी कराया तथा द्वादशांग श्रुत का पाठ कराया था। जिनेन्द्र भगवान् का उपासक राजर्षि जो स्वयं को भिक्षुराज कहता था,संभव है गृह और राजकार्य से विराम लेकर जैन मुनि के रूप में उसने कुमारी पर्वत पर तपश्चरण करके आत्मसाधना की हो।

पूर्वकाल में नन्दराजा द्वारा ले जायी गई कलिंगजिन (अग्रजिन या आदिजिन) प्रतिमा को राजा खारवेल ने मगध पर विजय करके अपने शासन के 200-250 वर्ष पूर्व वहाँ की प्रसिद्ध आदिनाथ भगवान् की प्रतिमा को पुनः वापस लाया था।

3. वीर मार्तण्ड चामुण्डराय

गंग नरेश जगदेकवीर धर्मावतार राचमल्ल का महासेनापति चामुण्डराय था। वह बड़ा वीर-योद्धा , परम जिनेन्द्र भक्त, कन्नड़, संस्कृत और प्राकृत भाषा का विद्वान् कवि एवं ग्रन्थकार, सुदक्ष सैन्य संचालक एवं जैन सिद्धान्त का अच्छा ज्ञाता था। अपनी शूरवीरता, साहस और पराक्रम के कारण उसने बड़ी ख्याति अर्जित की। युद्ध में रण कौशल के कारण समर, धुरन्धर, वीर मार्तण्ड, रणरंग सिंह, बैरिकुल काल दण्ड,भुज विक्रम, समर केशरी आदि उनकी उपाधियाँ थी। धार्मिक, नैतिक, चरित्र के लिए सम्यक्त्व रत्नाकर, शौचाभरण, गुणरत्न भूषण, सत्य युधिष्ठिर, देवराज आदि सार्थक उपाधियाँ प्राप्त थी। वह जिनेन्द्र भगवान् का, स्वगुरु अजितसेनाचार्य का और अपनी स्नेहमयी जननी का परम भक्त था। चामुण्डराय पुराण और चारित्रसार जैसे विशाल एवं महत्त्वपूर्ण ग्रंथ का प्रणेता भी वह था। गोम्मटसार की वीर मार्तण्डी टीका (कन्नड़) भी चामुण्डराय रचित मानी जाती है। चामुण्डराय की प्रेरणा अथवा निमित्त से आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने अपने सुप्रसिद्ध सिद्धान्त ग्रंथ गोम्मटसारकर्मकाण्ड, जीवकाण्ड, त्रिलोकसार आदि की रचना भी की थी। इन्होंने चन्द्रगिरी पर्वत पर इन्द्रनील मणि की नेमिनाथ भगवान् की प्रतिमा विराजमान करवाई थी एवं अपनी जननी कालल देवी की इच्छा पूरी करने के लिए सन् 978

ई. में बाहुबली भगवान् की विश्व विश्रुत विशाल 57 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा निर्मापित एवं प्रतिष्ठित करवाई थी; जो रूप, शिल्प और मूर्तिविज्ञान की अद्वितीय कलाकृति है। यह विश्व के आश्चर्यों में परिगणित है। इनकी पत्नी अजिता देवी धर्मपरायण महिला थी। इनका सुपुत्र जिनदेवन भी धर्मात्मा था। लगभग 990 ई. में इस महान् कर्मवीर एवं धर्मवीर चामुण्डराय का स्वर्गवास हो गया।

4. भामाशाह

भामाशाह, राणा उदयसिंह के समय से ही मेवाड़ राज्य का दीवान एवं प्रधानमंत्री था। हल्दी घाटी के युद्ध (1576 ई.) में पराजित होकर स्वतंत्रता प्रेमी और स्वाभिमानी राणाप्रताप जंगलों और पहाड़ों में भटकने लगे थे। वहाँ भी मुगल सेना ने उन्हें चैन नहीं लेने दिया। अतएव सभी ओर से हताश और निराश होकर उन्होंने स्वदेश का परित्याग करके अन्यत्र जाने का संकल्प किया। इस बीच स्वदेश भक्त एवं स्वाभिमानी मंत्रीश्वर भामाशाह चुप नहीं बैठा था। वह देशोद्धार के उपाय में जुटा रहा। ठीक जिस समय राणा भरे मन से मेवाड़ की सीमा से विदाई ले रहा था। वहाँ भामाशाह आ पहुँचा और मार्ग रोक कर खड़ा हो गया। उसने राणा प्रताप को ढांढस बंधाई और देशोद्धार के लिये उत्साहित किया। राणा ने कहा– न मेरे पास फूटी कौड़ी है न सैनिक और न साथी ही, फिर किस बूते पर प्रयत्न करुं। भामाशाह ने तुरंत विपुल द्रव्य उनके चरणों में समर्पित कर दिया। जिससे 25 हजार सैनिकों का 12 वर्षों तक निर्वाह हो सकता था। यह सब धन भामाशाह का अपना पैतृक एवं स्वयं उपार्जित किया हुआ अर्थात् निजी था। इस अप्रतिम उदारता एवं अप्रत्याशित सहायता पर राणा ने हर्ष विभोर होकर भामाशाह को आलिंगन बद्ध कर लिया। वह दुगने उत्साह से सेना जुटाने और मुगलों को देश से बाहर करने में जुट गया। अनेक युद्ध लड़े गये जिसमें वीर भामाशाह और ताराचन्द्र ने भी प्रायः बराबर भाग लिया। इन दोनों भाईयों ने मालवा पर जो मुगलों के आधीन था, चढ़ाई करके 25 लाख रुपये और 20 हजार अशर्फियाँ दण्ड स्वरूप प्राप्त कर राजा को समर्पित कीं और राज्य के गाँव-गाँव में प्राणों का संचार कर दिया। सैनिकों को जुटाना युद्ध सामग्री की व्यवस्था और युद्ध में भाग लेना आदि हर प्रकार से देश के उद्धार को सफल बनाने में पूर्ण योगदान दिया। इन प्रयत्नों का परिणाम यह हुआ कि मेवाड़ी वीरों की रणभेदी के बाद मुगल सैनिकों के पैर उखड़ने लगे और 1586 ई. तक चित्तौड़ और माण्डवगढ़ को छोड़कर सम्पूर्ण मेवाड़ पर राजा का पुनः अधिकार हो गया। अपनी इस उदार और अपूर्व सफलता के कारण भामाशाह मेवाड़ का उद्धारकर्ता कहलाया। मेवाड़ प्रतिष्ठा के पुनः स्थापक, स्वार्थ त्यागी, वीरश्रेष्ठ एवं मंत्री प्रवर भामाशाह का जन्म सोमवार 28 जून 1547 ई. को हुआ था और निधन लगभग 52 वर्ष की आयु में 27 जनवरी 1600 ई. में हुआ था, जीवाशाह, भामाशाह का सुयोग्य पुत्र था। उदयपुर में भामाशाह की समाधि अभी भी विद्यमान है। इस नररत्न ने एक सच्चे जैन के उपयुक्त आचरण द्वारा स्वधर्म, स्वसमाज एवं स्वदेश को गौरवान्वित किया।

अभ्यास प्रश्न

1. चाणक्य ने जैन धर्म के लिये क्या भूमिका निभाई ?
2. सम्राट खारवेल ने क्या-क्या निर्माण कराया?
3. वीर मार्तण्ड चामुण्डराय के अन्य नाम कौन-कौन से हैं ?
4. भामाशाह मेवाड़ का उद्धार कर्ता क्यों कहलाया?
5. ऐतिहासिक जैन महापुरुष पाठ से हमें क्या शिक्षा मिलती है ?

ई. में बाहुबली भगवान् की विश्व विश्रुत विशाल 57 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा निर्मापित एवं प्रतिष्ठित करवाई थी; जो रूप, शिल्प और मूर्तिविज्ञान की अद्वितीय कलाकृति है। यह विश्व के आश्चर्यों में परिगणित है। इनकी पत्नी अजिता देवी धर्मपरायण महिला थी। इनका सुपुत्र जिनदेवन भी धर्मात्मा था। लगभग 990 ई. में इस महान् कर्मवीर एवं धर्मवीर चामुण्डराय का स्वर्गवास हो गया।

4. भामाशाह

भामाशाह, राणा उदयसिंह के समय से ही मेवाड़ राज्य का दीवान एवं प्रधानमंत्री था। हल्दी घाटी के युद्ध (1576 ई.) में पराजित होकर स्वतंत्रता प्रेमी और स्वाभिमानी राणाप्रताप जंगलों और पहाड़ों में भटकने लगे थे। वहाँ भी मुगल सेना ने उन्हें चैन नहीं लेने दिया। अतएव सभी ओर से हताश और निराश होकर उन्होंने स्वदेश का परित्याग करके अन्यत्र जाने का संकल्प किया। इस बीच स्वदेश भक्त एवं स्वाभिमानी मंत्रीश्वर भामाशाह चुप नहीं बैठा था। वह देशोद्धार के उपाय में जुटा रहा। ठीक जिस समय राणा भरे मन से मेवाड़ की सीमा से विदाई ले रहा था। वहाँ भामाशाह आ पहुँचा और मार्ग रोक कर खड़ा हो गया। उसने राणा प्रताप को ढांढस बंधाई और देशोद्धार के लिये उत्साहित किया। राणा ने कहा- न मेरे पास फूटी कौड़ी है न सैनिक और न साथी ही, फिर किस बूते पर प्रयत्न करुं। भामाशाह ने तुरंत विपुल द्रव्य उनके चरणों में समर्पित कर दिया। जिससे 25 हजार सैनिकों का 12 वर्षों तक निर्वाह हो सकता था। यह सब धन भामाशाह का अपना पैतृक एवं स्वयं उपार्जित किया हुआ अर्थात् निजी था। इस अप्रतिम उदारता एवं अप्रत्याशित सहायता पर राणा ने हर्ष विभोर होकर भामाशाह को आलिंगन बद्ध कर लिया। वह दुगने उत्साह से सेना जुटाने और मुगलों को देश से बाहर करने में जुट गया। अनेक युद्ध लड़े गये जिसमें वीर भामाशाह और ताराचन्द्र ने भी प्रायः बराबर भाग लिया। इन दोनों भाईयों ने मालवा पर जो मुगलों के आधीन था, चढ़ाई करके 25 लाख रुपये और 20 हजार अशर्फियाँ दण्ड स्वरूप प्राप्त कर राजा को समर्पित कीं और राज्य के गाँव-गाँव में प्राणों का संचार कर दिया। सैनिकों को जुटाना युद्ध सामग्री की व्यवस्था और युद्ध में भाग लेना आदि हर प्रकार से देश के उद्धार को सफल बनाने में पूर्ण योगदान दिया। इन प्रयत्नों का परिणाम यह हुआ कि मेवाड़ी वीरों की रणभेदी के बाद मुगल सैनिकों के पैर उखड़ने लगे और 1586 ई. तक चित्तौड़ और माण्डवगढ़ को छोड़कर सम्पूर्ण मेवाड़ पर राजा का पुनः अधिकार हो गया। अपनी इस उदार और अपूर्व सफलता के कारण भामाशाह मेवाड़ का उद्धारकर्ता कहलाया। मेवाड़ प्रतिष्ठा के पुनः स्थापक, स्वार्थ त्यागी, वीरश्रेष्ठ एवं मंत्री प्रवर भामाशाह का जन्म सोमवार 28 जून 1547 ई. को हुआ था और निधन लगभग 52 वर्ष की आयु में 27 जनवरी 1600 ई. में हुआ था, जीवाशाह, भामाशाह का सुयोग्य पुत्र था। उदयपुर में भामाशाह की समाधि अभी भी विद्यमान है। इस नररत्न ने एक सच्चे जैन के उपयुक्त आचरण द्वारा स्वधर्म, स्वसमाज एवं स्वदेश को गौरवान्वित किया।

अभ्यास प्रश्न

1. चाणक्य ने जैन धर्म के लिये क्या भूमिका निभाई ?
2. सम्राट खारवेल ने क्या-क्या निर्माण कराया?
3. वीर मार्तण्ड चामुण्डराय के अन्य नाम कौन-कौन से हैं ?
4. भामाशाह मेवाड़ का उद्धार कर्ता क्यों कहलाया?
5. ऐतिहासिक जैन महापुरुष पाठ से हमें क्या शिक्षा मिलती है ?

पाठ-11

पुण्य-पाप

प्राणी की जीवन रूपी इस नदी के दो किनारे हैं पुण्य और पाप। जब तक जीवन नदी इन दो पाटों किनारों के बीच गमन करती है, तब तक ही संसार है, जैसे ही वह इससे ऊपर उठता है, मुक्त बन जाता है। मुक्त बनने में सबसे बड़े साधक कहें या बाधक ये पुण्य-पाप ही हैं। इसके बारे में फैली हुई अनेक भ्रान्तियों के निवारण के लिए इनका क्रमिक स्वरूप देखते हैं—

पुण्य का स्वरूप - कषाय की मन्दता सहित (शुभ) परिणामों को पुण्य कहते हैं या जो आत्मा को पवित्र बनाता है, उसे पुण्य कहते हैं। या इष्ट पदार्थों की प्राप्ति जिससे हो, उसे पुण्य कहते हैं।

कारण - दानादि कार्य करने से, गुरुओं का सम्मान करने से, पाप-कार्य न करने से, सत्य बोलने से, क्रोधादि-कषाय मन्द करने से, माता-पिता एवं बड़े जनों की सेवा करने से और षट् आवश्यक कार्य आदि करने से पुण्यबंध होता है। सभी शुभ क्रियाओं से पुण्यास्त्रव होता है।

पाप - संक्लेश अर्थात् कषाय की तीव्रता सहित (अशुभ) परिणामों को पाप कहते हैं। या अनिष्ट पदार्थों की प्राप्ति जिससे हो उसे पाप कहते हैं।

कारण - किसी जीव के दिल दुखाने से, घात करने से, झूठ बोलने से, पाप कार्य करने से, कषायादि करने से, गुरुओं की विनय न करने से और दूसरों की निन्दादि करने से पापबंध होता है। सभी अशुभ क्रियाओं से पापास्त्रव होता है।

भेद - पुण्य और पाप दोनों के 2-2 भेद हैं।

(1) पुण्यानुबन्धी पुण्य-पुण्य का अनुबन्ध कराने वाला पुण्य। जैसे-दानादि देना। प्रथम तो पुण्य के उदय से धन मिला फिर उसको भी धर्मकार्य में लगाना, पुण्यानुबन्धी पुण्य है।

(2) पापानुबन्धी पुण्य - पाप का अनुबन्ध कराने वाला पुण्य। जैसे-दुष्ट राजा। पुण्य के प्रभाव से वह राजा बना, परन्तु राजा बनकर भी पापादि बुरा कार्य करता है, यह पापानुबन्धी पुण्य है।

पाप के दो भेद

(1) पापानुबन्धी पाप - पाप का अनुबन्ध कराने वाला पाप। जैसे-भिखारी। पाप कर्म से वह भिखारी बना और यहाँ भी पापकर्म करके पाप ही बाँधे, यह पापानुबन्धी पाप है।

(2) पुण्यानुबन्धी पाप - पुण्य को अनुबन्ध कराने वाला पाप। जैसे-मंदिर की सुरक्षा के लिये शस्त्र आदि चलाना, यह पुण्यानुबन्धी पाप है।

पुण्य-पाप का फल-कुछ आचार्य पाप को लोहे की बेड़ी एवं पुण्य को सोने की बेड़ी बताकर एक-सा मानते हैं। यद्यपि यह सत्य है फिर भी पुण्य परम्परा से मोक्ष में कारण है, जबकि पाप नियम से कुगतियों में कारण है। पुण्य से जहाँ उच्च पद, धन सम्पदा, ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है, वही पाप से लोकनिंद्य कुल में जन्म लेना पड़ता है। इसलिए पाप से पुण्य श्रेष्ठ है।

पुण्य एवं पाप दोनों ही संसारापेक्षा हेय हैं, क्योंकि बंध दोनों से होता है, दोनों ही संसार के कारण हैं। इसलिए यद्यपि हम पापों का सर्वदेश त्याग नहीं कर सकते तथापि अणुव्रत रूप एकदेश त्याग तो करना ही चाहिए, जिससे हमारी स्थूल पापों से विरक्ति हो और पुण्य कार्य करने में रुचि बढ़े।

वास्तविकता यह है कि पाप सर्वथा हेय है, पुण्य कथञ्चित् हेय और कथञ्चित् उपादेय है अर्थात् हम गृहस्थों के लिए तो उपादेय है और शुद्धोपयोगी मुनियों के लिए हेय है तथा शुद्धोपयोग (कषाय रहित परिणाम) सर्वथा उपादेय है। अतः हमें कषायों की मन्दता रखते हुये पापों का एक देश त्याग करके, जब तक गृहस्थावस्था है तब तक, अणुव्रतों को तो अवश्य धारण करना चाहिए और भविष्य में महाव्रतों को धारणकर, शुद्धोपयोग की भावना रखनी चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1. पुण्य और पाप का स्वरूप बताइए।
2. पुण्य बंध के कारण बताइए।
3. पाप का बंध कराने वाले कारणों को बताइए।
4. पापानुबंधी पुण्य का स्वरूप बताइए।
5. गृहस्थ के लिए पुण्य-पाप में क्या उपादेय है?

पाठ-12

आचार्य श्री विद्यासागर जी

आपका जन्म कर्नाटक प्रान्त के बेलगाँव जिले के सदलगा ग्राम आश्विन शुक्ल 15 (शरद पूर्णिमा) संवत् 2003 तदनुसार 10 अक्टूबर 1946, गुरुवार रात्रि 11: 30 बजे हुआ था। आपका जन्म नाम विद्याधर था और प्यार से लोग पीलू, मरी, गनी के नाम से पुकारते थे। आपका परिवार धन-धान्य से सम्पन्न था। आपके पिता अत्यन्त कर्मठ और ईमानदार कृषक थे। आपको धार्मिक संस्कार अपने माता-पिता से प्राप्त हुये।

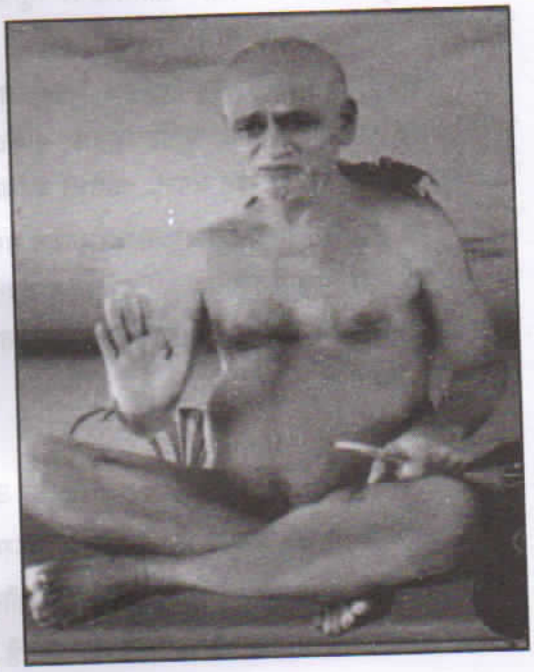

आपके पिता श्री मलप्पा जी जैन (अष्टगे गोत्र) समाधिस्थ (108 मुनि श्री मल्लिसागर जी महाराज) एवं माता श्रीमती श्रीमति जी (समाधिस्थ आर्यिका समयमति जी) बड़े भाई श्री महावीर प्रसाद जी (गृहस्थ अवस्था) में है। आपके भाई श्री अनन्त नाथ जी, श्री शान्ति नाथ जी, बहिन कुमारी शान्ता एवं कुमारी सुवर्णा संयम के पथ पर अग्रसर हैं, जिनके नाम क्रमशः मुनि श्री योग सागर जी, मुनि श्री समय सागर जी, ब्रह्मचारिणी प्रवचनमति जी, ब्रह्मचारिणी नियममति है।

आपने प्राथमिक एवं उच्च स्कूली शिक्षा अपनी मातृभाषा कन्नड़ में ग्रहण की और बाद में जैन दर्शन, न्याय, व्याकरण, साहित्य और अध्यात्म की शिक्षा अपने धर्म गुरु आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज के चरणों में रहकर अर्जित की। आप संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी, कन्नड़, प्राकृत, अपभ्रंश आदि 13 भाषाओं के अच्छे ज्ञाता हैं।

आत्मज्ञान प्राप्त करने की आकांक्षा आपके मन में बचपन से ही थी। बचपन में चारित्र चक्रवर्ती श्री आचार्य शांतिसागर जी महाराज के दर्शन पाकर यह भावना और प्रबल हो गई और फलस्वरूप 20 वर्ष की युवा अवस्था में वैराग्य से ओतप्रोत होकर आपने गृह त्याग दिया। सन् 1967 में आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज से ब्रह्मचर्य व्रत लेकर चारित्र पथ में अग्रसर हुये। आपने राजस्थान के अजमेर नगर में आषाढ़ सुदी पंचमी विक्रम संवत् 2025 तदनुसार 30 जून, 1968 को आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज से सोनी जी की नसियाँ में दिगम्बर मुनि दीक्षा धारण की और मुनि विद्यासागर के नाम से प्रसिद्ध हो गये। नसीराबाद में मगसिर कृष्ण द्वितीया विक्रम संवत् 2023 तदनुसार 22 नवम्बर, 1972 को आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने आपको आचार्य पद से अलंकृत किया। गुरुकृपा, आत्मनिष्ठा और सतत साधना के बल पर आपने परम ब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार करने वाली आत्मविद्या को

प्राप्त कर लिया। वर्तमान में आप अपने विशाल संघ के नायक हैं। आपसे दीक्षित लगभग 60 मुनिराज और 112 आर्यिकाएं, 9 ऐलक, 7 क्षुल्लक एवं संघस्थ लगभग 250 ब्रह्मचारी भाई-बहिन हैं।

साहित्य साधना-आपकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं-

संस्कृत शतकम्-शारदा स्तुति, श्रमण शतकम्, निरंजन शतकम्, भावना शतकम्, परीषहजय शतकम्, सुनीति शतकम्।

हिन्दी काव्य-मूकमाटी महाकाव्य, नर्मदा का नरम कंकर, डूबो मत लगाओ डुबकी,तोता क्यों रोता?, चेतना के गहराव में, चेतन चन्द्रोदय चम्पू काव्य।

स्तुति सरोज-आचार्य शान्तिसागर स्तुति, आचार्य वीरसागर स्तुति, आचार्य शिवसागर स्तुति, आचार्य ज्ञानसागर स्तुति, अध्यात्म भक्ति गीत।

हिन्दी शतक-निजानुभवशतक, मुक्तकशतक, श्रमणशतक, निरंजनशतक, भावनाशतक,परीषहजयशतक, सुनीतिशतक,दोहादोहनशतक, सूर्योदयशतक, पूर्णोदयशतक, सूर्योदयशतक, जिनस्तुतिशतक, जम्बू स्वामी चरित्र, विज्जाणुवेक्खा प्राकृत, कन्नड़,बंगला, अंग्रेजी कविता, शताधिक प्रकाशित प्रवचनावली अनेक पुस्तक।

अनुवादित ग्रन्थ-कुन्दकुन्द का कुन्दन समयसार, निजामृत पान समयसार कलश, अष्ट पाहुड़, नियमसार, वारस अणुपेक्खा, पंचास्तिकाय, इष्टोपदेश वसंत -तिलका, प्रवचन सार, समाधि सुधा शतकम्, समाधि शतक, नवभक्तियाँ (पूज्यपाद आचार्यकृत), समन्तभद्र की भद्रता (स्वयंभू स्तोत्र), रयण मंजूषा (रत्नकरण्डक श्रावकाचार) आदि।

अभ्यास प्रश्न

1. आचार्य श्री को बचपन में लोग किस-किस नाम से पुकारते थे ?
2. आचार्य श्री के गृहस्थ अवस्था में कौन-कौन था ?
3. आचार्य श्री को कितनी भाषाओं का ज्ञान है ?
4. ब्रह्मचारी विद्याधर ने मुनि पद कब धारण किया?
5. आचार्य श्री द्वारा लिखित 10 कृतियों के नाम बताइए।

Part -2

पाठ-1

दर्शन स्तुति

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।
अब तक तुमको बिन जाने, दुख पाये जिन गुण हाने॥
पाये अनंते दु:ख अब तक, जगत को निज जानकर।
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहिं पहिचान कर॥
भव बंधकारक सुखप्रहारक, विषय में सुख मानकर।
निज पर विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधि सुधा नहिं पानकर॥
तव पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये।
निज ज्ञान कला उर जागी, रुचिपूर्ण स्वहित में लागी॥
रुचि लगी हित में आत्म के, सतसंग में अब मन लगा।
मन में हुई अब भावना, तव भक्ति में जाऊँ रंगा॥
प्रिय वचन की हो टेव, गुणिगण गान में ही चित पगै।
शुभ शास्त्र का नित हो मनन, मन दोष वादनतें भगै॥
कब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।
ममतामय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारूँ वन जाकर॥
धरकर दिगम्बर रूप कब, अठ-बीस गुण पालन करूँ।
दो-बीस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दश धारन करूँ॥
तप तपूँ द्वादश विधि सुखद नित, बंध आस्रव परिहरूँ।
अरु रोकि नूतन कर्म संचित, कर्म रिपु कों निर्जरूँ॥
कब धन्य सुअवसर पाऊँ, जब निज में ही रम जाऊँ।
कर्तादिक भेद मिटाऊँ, रागादिक दूर भगाऊँ॥
कर दूर रागादिक निरंतर, आत्म को निर्मल करूँ।
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल, लहि चरित क्षायिक आचरूँ॥
आनन्दकन्द जिनेन्द्र बन, उपदेश को नित उच्चरूं।
आवै 'अमर' कब सुखद दिन, जब दु:खद भवसागर तरूँ॥

पाठ-2

अभक्ष्य

जो पदार्थ खाने (भक्षण करने) योग्य नहीं होता उसे अभक्ष्य कहते हैं।

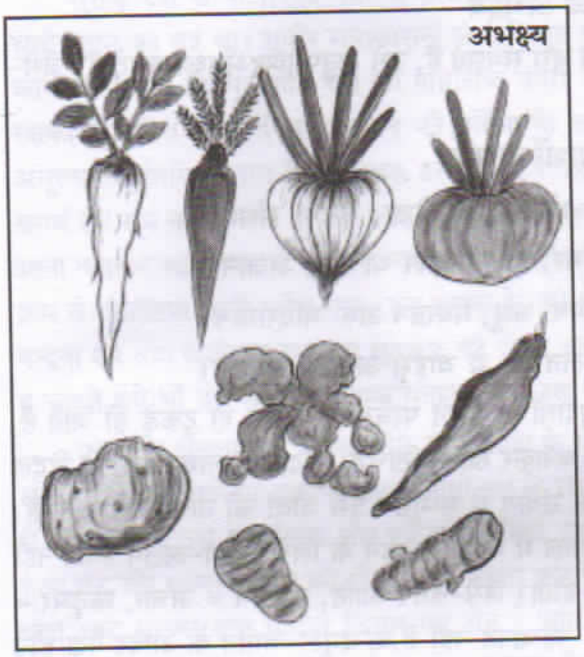

अभक्ष्य के भेद

त्रसहिंसाकारक, बहुस्थावर हिंसाकारक, प्रमादकारक, अनिष्ट और अनुपसेव्य ये पाँच अभक्ष्य हैं।

त्रसहिंसाकारक अभक्ष्य

जिस पदार्थ के खाने से त्रसजीवों का घात होता है। उसे त्रस हिंसाकारक अभक्ष्य कहते हैं। जैसे वर्थ डे केक, विदेशी टॉफी, बाजार की मिठाई, अंडा, नॉनवेज, होटल का भोजन, पत्ता तथा फूल गोभी, घुना अन्न, अमर्यादित वस्तु, मुरब्बा, पुराना आचार और द्विदल आदि के खाने से त्रसजीवों का घात होता है।

बहुस्थावर हिंसाकारक अभक्ष्य

जिस पदार्थ के खाने से अनन्त स्थावर जीवों का घात होता है, उसे बहुस्थावर हिंसाकारक अभक्ष्य कहते हैं। जैसे-आलू, घुईया (अरबी), मूली, गाजर, प्याज, लहसुन, अदरक, शकरकन्द, तुच्छफल और तरबूज आदि के खाने में अनन्त स्थावर जीवों का घात होता है।

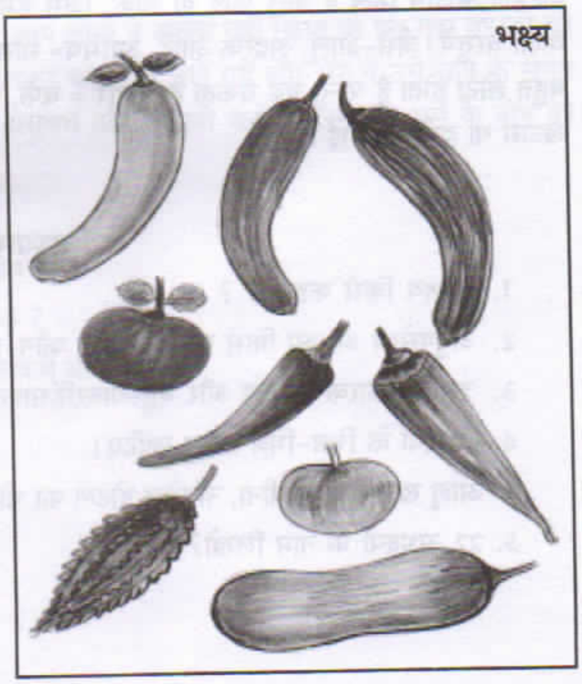

प्रमादकारक अभक्ष्य

जिस पदार्थ के खाने से प्रमाद, आलस्य अथवा बुरी भावनायें आती हैं, उसे प्रमादकारक अभक्ष्य कहते हैं। जैसे-शराब, भांग, चरस, कोकीन, बीड़ी, सिगरेट, गुटका, तम्बाखू, गांजा और अफीम आदि नशीली वस्तुयें। इन चीजों के खाने से प्रमाद बढ़ता है।

अनिष्टकारक अभक्ष्य

जो पदार्थ भक्ष्य होने पर भी पथ्य (हितकर) नहीं होता, उसे अनिष्टकारक अभक्ष्य कहते हैं। जैसे खांसी के रोग वाले को मिठाई खाना, बुखार वाले को हलुवा खाना और जुकाम वाले को ठण्डी वस्तु खाना अनिष्टकारक है अर्थात् हितकर नहीं है।

अनुपसेव्य अभक्ष्य

जिस पदार्थ को खाना अपने समाज तथा धर्म वाले बुरा समझते हैं, उसे अनुपसेव्य अभक्ष्य कहते हैं। जैसे-शंख, हाथीदांत, कस्तूरी, स्वमूत्र,गोमूत्र आदि पदार्थ।

अभक्ष्य पदार्थों के नाम

ओला, घोलबड़ा, निशि भोजन, बहुबीजा, बैगन, संधान।
बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर, पाकर फल या होय अजान॥
कन्दमूल, माटी विष आमिष, मधु, मक्खन अरु मदिरापान।
फल अतितुच्छ तुषार चलितरस, ये बाईस अभक्ष्य बखान।

शब्दार्थ- घोलबड़ा = चना, मूंग, उड़द आदि पदार्थों के दलने परबराबर-बराबर दो टुकड़े हो जाते हैं, उनके साथ दही या छाछ से कढ़ी बनाकर खाना, रायता बनाकर खाना, खिचड़ी में दही मिलाकर खाने से द्विदल होता है। ऐसे द्विदल के मुख में जाने से जीभ में लार के संयोग से सम्मूर्छन त्रस जीवों की उत्पत्ति हो जाती है। जिससे महाहिंसा का पाप लगता है। **बहुबीजा** = जिस फल में बीजों के रहने के लिये अलग-अलग स्थान नहीं होता अर्थात् जिसमें दल के भीतर बीजों का घर नहीं होता। जैसे-बैंगन आदि, **सन्धान** = अचार, **कठूमर** = कटहल,**अजान फल** = कोई फल या शाक, जिसे हम पहचानते नहीं हैं,**कन्दमूल**=जमीन के अन्दर पैदा होने वाली वस्तुयें। जैसे-आलू, अदरक आदि, **आमिष**= मांस, **तुच्छफल** = जिस फल में बीज नहीं आ पाये और जो बहुत छोटा होता है परन्तु बढ़ सकता है, **तुषार** = बर्फ, **चलितरस** =जिसका स्वाद बिगड़ गया है, अर्थात् जिसमें खटास या दुर्गंध आ गई हो।

अभ्यास प्रश्न

1. अभक्ष्य किसे कहते हैं ?
2. अनुपसेव्य अभक्ष्य किसे कहते हैं और कौन-कौन से हैं ?
3. त्रसहिंसाकारक अभक्ष्य और बहुस्थावरहिंसाकारक अभक्ष्य में अन्तर लिखिए।
4. अभक्ष्यों के भिन्न-भिन्न प्रकार छांटिए।
   आलू खाना, बीयर पीना, नॉनवेज होटल का भोजन करना।
5. 22 अभक्ष्यों के नाम लिखो?

पाठ-3

जिनेन्द्र भक्त सेठ

सुराष्ट्र देश के पाटलिपुत्र नगर में राजा यशोधर रहता था। उसकी रानी का नाम सुसीमा था। उन दोनों के सुवीर नाम का पुत्र था। सुवीर सप्तव्यसनों से अभिभूत था तथा ऐसे ही चोर पुरुष उसकी सेवा करते थे। उसने कानों कान सुना कि पूर्व गौड़ देश की ताम्रलिप्त नगरी में जिनेन्द्रभक्त सेठ के सतखण्डा महल के ऊपर अनेक रक्षकों से सहित श्रीपार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमा के ऊपर जो छत्रत्रय लगा है उस पर एक विशेष प्रकार का अमूल्य वैडूर्यमणि संलग्न है। लोभवश उस सुवीर ने अपने साथियों से पूछा कि क्या कोई उस मणि को लाने में समर्थ है? सूर्य नामक चोर ने गला फाड़कर कहा कि यह तो क्या है, मैं इन्द्र के मुकुट का मणि भी ला सकता हूँ। इतना कहकर वह कपट से क्षुल्लक बन गया और अत्यधिक कायक्लेश से ग्राम तथा नगरों में क्षोभ करता हुआ क्रम से ताम्रलिप्त नगरी पहुँच गया। उन क्षुल्लक के बारे में जिनेन्द्र भक्त सेठ ने जब सुना तब वहाँ जाकर दर्शन-वन्दना कर तथा वार्तालाप कर उस क्षुल्लक को अपने घर ले आया। उसने पार्श्वनाथ देव के उसे दर्शन कराये और न चाहते हुये भी उसे मणि का रक्षक बनाकर वहीं रख लिया।

एक दिन क्षुल्लक से पूछकर सेठ समुद्र यात्रा के लिये चला और नगर से बाहर निकलकर ठहर गया। वह क्षुल्लक सेठ के जाने पर एकान्त पाकर आधी रात के समय उस मणि को लेकर चलता बना। मणि के तेज से मार्ग में कोतवालों ने उसे देख लिया और पकड़ने के लिये उसका पीछा किया। कोतवालों से बचकर भागने में असमर्थ हुआ वह चोर क्षुल्लक, सेठ की ही शरण में जाकर कहने लगा कि मेरी रक्षा करो, रक्षा करो। कोतवालों का कल-कल शब्द सुनकर तथा पूर्वापर विचार कर सेठ ने जान लिया कि यह चोर है, परन्तु धर्म का उपहास बचाने के लिये सेठ ने कहा कि यह मेरे कहने से ही रत्न लाया है, आप लोगों ने अच्छा नहीं किया जो इस महा तपस्वी को चोर घोषित किया। तदनन्तर सेठ के वचन को प्रमाण मानकर कोतवाल चले गये और सेठ ने उसे रात्रि के समय निकाल दिया। इसी प्रकार अन्य सम्यग्दृष्टियों को भी असमर्थ और अज्ञानी जनों से लगे हुये धर्म के दोष का आच्छादन करना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न

1. धर्म का उपहास बचाने के लिये सेठ ने क्या किया ?
2. क्षुल्लक का वेष बनाकर सूर्य किस उद्देश्य से चैत्यालय में आया था?

पाठ-4

व्रत

अच्छे कार्यों के करने का नियम करना अथवा बुरे कार्यों को छोड़ना व्रत कहलाता है।

श्रावक पाँच पापों को स्थूल रूप से त्याग करते हैं, इस कारण उनके व्रत अणुव्रत कहलाते हैं। मुनि पूर्ण रूप से त्याग करते हैं, इसलिए उनके व्रत महाव्रत कहलाते हैं।

व्रत 12 होते हैं-5 अणुव्रत, 3 गुणव्रत, 4 शिक्षाव्रत। इनको श्रावक के उत्तर-गुण भी कहते हैं। इनको पालने वाला श्रावक (व्रती) कहलाता है।

अणुव्रत

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील तथा परिग्रह। इन पाँच पापों का स्थूल रूप से एकदेश त्याग करना अणुव्रत कहलाता है।

अणुव्रत 5 होते हैं-1. अहिंसाणुव्रत 2. सत्याणुव्रत 3. अचौर्याणुव्रत 4. ब्रह्मचर्याणुव्रत 5. परिग्रहपरिमाणाणुव्रत।

1. अहिंसाणुव्रत-प्रमाद से या संकल्पपूर्वक (इरादा करके) त्रस जीवों का घात नहीं करना अहिंसाणुव्रत है। अहिंसाणुव्रती 'मैं इस जीव को मारूँ' ऐसे संकल्प से कभी किसी जीव का घात नहीं करता, न कभी किसी जीव को मारने का विचार करता है और न वचन से किसी से कहता है कि तुम इसे मारो। गृहस्थी चलाने, खेती-व्यापार करने तथा शत्रु से अपने को बचाने में जो हिंसा होती है, उनका श्रावक त्यागी नहीं होता, परन्तु कम से कम करता है।

2. सत्याणुव्रत-स्थूल (मोटा) झूठ,न तो स्वयं बोलना, न दूसरे से बुलवाना और ऐसा सच भी नहीं बोलना जिसके बोलने से किसी जीव का अथवा धर्म का घात होता हो। प्रमाद से जीवों को पीड़ाकारक वचन नहीं बोलना,सत्याणुव्रत है।

3. अचौर्याणुव्रत-लोभ वगैरह प्रमाद के वश में आकर बिना दिए हुए किसी भी वस्तु को ग्रहण नहीं करना अचौर्याणुव्रत है। अचौर्याणुव्रत का धारी दूसरे की चीज को न तो आप लेता है और न उठाकर दूसरे को देता है।

4. ब्रह्मचर्याणुव्रत-परस्त्री सेवन तथा वेश्या सेवन का त्याग करना ब्रह्मचर्याणुव्रत है। ब्रह्मचर्याणुव्रत धारी अपनी स्त्री को छोड़कर, अन्य सब स्त्रियों को पुत्री,बहिन और माँ के समान समझता है, कभी किसी को बुरी निगाह से नहीं देखता। अष्टमी-चतुर्दशी आदि पर्व के दिनों में कामसेवन कदापि नहीं करता। 5

परिग्रहपरिमाणाणुव्रत-धन, धान्य, हाथी, घोड़े, नौकर, चाकर, बर्तन वगैरह परिग्रह का अपनी आवश्यकतानुसार परिमाण कर लेना कि मैं इतना रखूंगा, बाकी सबका त्याग कर देना, परिग्रहपरिमाणाणुव्रत है।

गुणव्रत

जो अणुव्रतों का उपकार करें व उनके गुणों में वृद्धि करें उन्हें गुणव्रत कहते हैं। गुणव्रत 3 हैं-

1. दिग्व्रत 2. देशव्रत 3. अनर्थदण्डव्रत।

1. दिग्व्रत-लोभ, आरम्भ आदि की कमी के अभिप्राय से पूर्व-पश्चिम वगैरह दशों दिशाओं में प्रसिद्ध नदी, गाँव, नगर, पहाड़ वगैरह की हद बांध कर जन्मपर्यन्त उस हद से बाहर न जाने का नियम करना दिग्व्रत कहलाता है। जैसे-मैं पूर्व दिशा में कलकत्ता, पश्चिम दिशा में बम्बई, उत्तर दिशा में श्रीनगर, दक्षिण दिशा में चेन्नई से आगे नहीं जाऊंगा।

2. देशव्रत-घड़ी, घण्टा, दिन, महीना वगैरह नियत समय तक,जन्मपर्यन्त के लिए किए हुए दिग्व्रत में और भी संकोच करके किसी ग्राम, नगर, घर, मुहल्ला वगैरह तक आना-जाना रख लेना और उससे बाहर न जाना देशव्रत है। जैसे-दशलक्षण पर्व के दश दिनों में अपने शहर से बाहर नहीं जाऊंगा।

3. अनर्थदण्डव्रत-बिना प्रयोजन ही जिन कार्यों व पाप का आरम्भ हो उन कार्यों का त्याग करना, अनर्थदण्डव्रत है। जैसे-किसी को हिंसा का उपदेश देना,किसी की हारजीत सोचना, व्यर्थ में पानी फैलाना या वृक्षों को तोड़ना, टैक्स की चोरी करने के रास्ते बताना, घातक हथियार देना, कुत्ते बिल्ली आदि पालना, सिनेमा या कामवर्धक खोटी कथाओं के सुनने या पढ़ने का त्याग करना।

शिक्षाव्रत

जिनसे मुनिव्रत पालन करने की शिक्षा मिले,उनको शिक्षाव्रत कहते हैं। शिक्षाव्रत 4 हैं -

1. सामायिक शिक्षाव्रत- मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना के द्वारा नियत समय तक पाँचों पापों का त्याग करना और सबसे राग-द्वेष छोड़कर, अपने शुद्ध आत्मस्वरूप में लीन होना, सामायिक शिक्षाव्रत कहलाता है।

2. प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत-प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को समस्त आरम्भ-परिग्रह छोड़कर और विषय कषाय तथा आहार पानी का 16 पहर (48 घंटे) तक त्याग करना, प्रोषधोपवास कहलाता है। प्रोषध एक बार भोजन करने अर्थात् एकाशन का नाम है। एकाशन के साथ उपवास करना प्रोषधोपवास कहलाता है। जैसे किसी पुरुष को अष्टमी का प्रोषधोपवास करना है, तो उसे सप्तमी और नवमी को एकाशन और अष्टमी को उपवास करना चाहिए और श्रृंगार, आरम्भ, गंध, पुष्प (तेल, इतर, फुलेल), स्नान, अंजन, सूंघनी वगैरह चीजों का त्याग करना चाहिए। यह उत्कृष्ट प्रोषधोपवास की रीति है। व्रती प्रत्येक अष्टमी व चतुर्दशी को कम से कम एकभुक्ति करके भी इस व्रत का पालन कर सकता है।

3. भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रत-भोगोपभोग की सत्रह वस्तु या कार्यों का प्रतिदिन नियम करना। जैसे-आज में एक बार जल पीऊंगा, आज में सवारी में नहीं बैठूंगा आदि।

4. अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत-भक्ति सहित, फल की इच्छा के बिना, स्वपर कल्याण के लिये मुनि आदि पात्रों को दान देना अतिथि संविभाग व्रत है। दान चार प्रकार का है-

1. आहारदान-मुनि, आर्यिका, श्रावक, व्रती आदि को शुद्ध भोजन देना आहारदान है।

2. ज्ञानदान-धार्मिक पुस्तकें बांटना, पाठशालाएँ खोलना, व्याख्यान देकर धर्म और कर्त्तव्य का ज्ञान कराना ज्ञानदान है।

3. औषधिदान-चतुर्विध संघ को औषधि देना, उनकी सेवा करना, औषधिदान है।

4. अभयदान- जीवों की रक्षा करना अथवा मुनि, त्यागी और ब्रह्मचारी लोगों के रहने के लिए स्थान बनवाना, अंधेरी रात में सड़कों पर रोशनी की व्यवस्था करवाना, चौकी पाटा लगवाना, धर्मात्मा पुरुषों को दुःख और संकट से निकालना अभयदान है।

अभ्यास प्रश्न

1. व्रत किसे कहते हैं? व्रतों के कितने भेद हैं ?
2. अणुव्रत-महाव्रत का स्वरूप बताइए।
3. भोग-उपभोग, यम-नियम, दिग्व्रत-देशव्रत और उपवास-प्रोषधोपवास में क्या अन्तर है ? उदाहरण देकर समझाइए।
4. प्रोषधोपवास के दिन क्या-क्या करना चाहिए ?
5. सामायिक कहाँ और किस समय करनी चाहिए और सामायिक करते समय क्या विचार करना चाहिए?

पाठ-5

गणेशप्रसाद जी वर्णी

इस भारत वसुन्धरा पर अनेक आध्यात्मिक सन्त हुये हैं, जिन्होंने अपने जीवन एवं सद्कर्मों से देश, समाज व जनसामान्य का कल्याण किया है उसी श्रृंखला में आदर्श सन्त गणेशप्रसादजी वर्णी का नाम मुख्य है।

आपका जन्म आसौज कृष्ण चतुर्थी विक्रम संवत् 1931 में उत्तर प्रदेश के ललितपुर जिले के हंसेरा ग्राम के एक वैष्णव परिवार में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री हीरालाल जी एवं माता का नाम उजियारी देवी था। जिन्हें वैष्णव होते हुये भी णमोकार मंत्र पर अगाध श्रद्धा थी।

गणेशप्रसाद जी बचपन से ही होनहार, धर्मप्रिय, दयालु स्वभाव के थे। जैन मन्दिर के सामने मकान होने के कारण मन्दिर जी में होने वाली शास्त्रसभा आदि गतिविधियों का उनके मन पर बहुत प्रभाव पड़ा। वे शीघ्र ही अहिंसा, अनेकांत, अपरिग्रहवाद आदि जैन सिद्धान्तों से प्रभावित होकर जैन धर्मावलम्बी बन गये। उन्होंने स्वयं ही रात्रिभोजन का त्याग कर दिया और पानी छानकर पीने लगे। उनकी रुचि धर्माराधना में विशेष थी। उनकी ज्ञान पिपासा और धर्म पर दृढ़ आस्था से प्रभावित होकर, धर्मप्राण जैन महिला चिरोंजाबाई ने उन्हें धर्मपुत्र के रूप में स्वीकार करके, जैनधर्म व दर्शन का गहन अध्ययन करने को प्रेरित किया। तब उन्होंने मथुरा, जयपुर, काशी आदि जाकर बड़े-बड़े विद्वानों से विद्या अर्जन की। उनकी विनम्रता, सादगी और लगन ने अनेक विद्वानों को प्रभावित किया।

उनको विद्या ग्रहण करने के लिए दर-दर भटकना पड़ा था और अनेक कष्ट सहन करने पड़े थे। इसलिए उन्होंने आगे आने वाली पीढ़ी को कष्टों से बचाने के लिए जैनधर्म के दर्शन, न्याय और सिद्धान्त की शिक्षा के लिए बनारस, सागर, ललितपुर, घुवारा, खतौली आदि में विद्यालय और महाविद्यालय खुलवाये। उनकी प्रेरणा से अनेक स्थानों में पाठशालाओं, गुरुकुलों, स्वाध्याय शालाओं, सरस्वती भण्डारों, महिलाश्रमों और उदासीनाश्रमों की स्थापना हुई। समाज का उत्थान, दीन दुर्बल प्राणियों का उद्धार, रूढ़िवादिता और अन्धविश्वास का उन्मूलन कर समाज में ज्ञान चेतना का संचार करना ही उनका लक्ष्य था। दीन दुखियों के लिए सर्वस्व दान करने को वे सदैव तत्पर रहते थे। उनकी दृष्टि में सभी मानव समान थे। वे कहते थे कि प्रत्येक जीव धर्म श्रद्धा, ज्ञान और सदाचार से अपना कल्याण कर सकता है। वे संसार, शरीर और भोगों से उदासीन थे। उन्होंने कुण्डलपुर में सातवीं प्रतिमा रूप व्रत लिये थे। इस अवसर पर ही उन्हें वर्णी जी की उपाधि से विभूषित किया गया था। बाद में उन्होंने क्षुल्लक दीक्षा ले ली एवं इसी अवस्था में उन्होंने देशभर में भ्रमण कर सरल भाषा में धर्मोपदेश दिया।

अन्तिम समय में वे ईसरी उदासीन आश्रम में रहने लगे। और वहीं मुनिव्रत ग्रहणकर समाधिपूर्वक शरीर त्याग किया। देश के उच्चकोटि के नेता व विद्वान् पं. मोतीलाल नेहरू, राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, संत विनोबाभावे आदि उनसे बहुत प्रभावित थे और राष्ट्र संत के रूप में उनका सम्मान करते थे। वर्णीजी का आदर्श चरित्र समस्त देशवासियों को सदैव प्रेरणा देता रहेगा। मेरी जीवन गाथा उनकी (आत्मकथा) उनके आदर्शमयी जीवन का जीता जागता उदाहरण है।

अभ्यास प्रश्न

1. वर्णी जी का जन्म कब और कहाँ हुआ था ?
2. वर्णी जी के माता-पिता का और ग्राम का क्या नाम था?
3. वर्णी जी में धार्मिक संस्कार किस प्रकार उत्पन्न हुए?
4. वर्णी जी ने शिक्षा व समाज के विकास में क्या योगदान दिया?
5. वर्णी जी के जीवन चरित्र से आपको क्या शिक्षा मिलती है? संक्षेप में बताइए?

पाठ-6

ग्यारह प्रतिमा

श्रावक के 11 दर्जे होते हैं, उन्हें ग्यारह प्रतिमा कहते हैं। श्रावक ऊपर-ऊपर चढ़ता हुआ एक से दूसरी, दूसरी से तीसरी, तीसरी से चौथी, इसी तरह ग्यारहवीं प्रतिमा तक चढ़ता है और उससे ऊपर चढ़कर साधु या मुनि कहलाता है। अगली-अगली प्रतिमाओं में पहले की प्रतिमाओं की क्रिया का होना भी जरूरी होता है। ये प्रतिमा जीवन भर के लिये ली जाती हैं।

1. दर्शन प्रतिमा-सम्यग्दर्शन सहित अतिचार रहित आठ मूलगुणों का धारण करना और सात व्यसनों का अतिचार सहित त्याग करना दर्शन प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी दार्शनिक श्रावक कहलाता है। यह सदा संसार में उदासीन रहता है और इस जन्म तथा अगले जन्म में सांसारिक सुखों की वांछा नहीं रखता।

2. व्रत प्रतिमा-5 अणुव्रत, 3 गुणव्रत, 4 शिक्षाव्रत, इन 12 व्रतों का पालन करना व्रत प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी व्रती श्रावक कहलाता है।

3. सामायिक प्रतिमा-प्रतिदिन प्रात:काल, मध्याह्नकाल और सायंकाल दो-दो घड़ी विधिपूर्वक,निरतिचार सामायिक करना, सामायिक प्रतिमा है।

सामायिक करने की विधि -पहले पूर्व दिशा की ओर मुँह करके खड़े होकर नौ बार णमोकार मन्त्र पढ़कर दण्डवत करे, फिर उसी तरफ खड़े होकर तीन बार णमोकार मन्त्र पढ़कर तीन आवर्त और एक नमस्कार (शिरोनति) करें और फिर क्रम से दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा की ओर तीन-तीन आवर्त और एक-एक नमस्कार करें, अनन्तर पूर्व दिशा की ओर मुँह करके खड़े होकर अथवा बैठकर मन, वचन, काय को शुद्ध करके पाँचों पापों का त्याग करें, सामायिक पाठ पढ़ें, आत्मचिन्तन करें या किसी मन्त्र का जाप करें। फिर अन्त में खड़ा हो नौ बार णमोकर मन्त्र पढ़कर पूर्ववत् चारों दिशाओं में आवर्त व नमस्कार करें। सामायिक का समय उत्कृष्ट छह घड़ी, मध्यम चार घड़ी, जघन्य दो घड़ी है। 24 मिनट की एक घड़ी होती है।

4. प्रोषध प्रतिमा-हर एक अष्टमी और चतुर्दशी को 16 पहर का अतिचार रहित उपवास अर्थात् प्रोषधोपवास करना और गृह, व्यापार, भोग, उपभोग की समस्त सामग्री का त्याग करके एकांत में बैठकर धर्म-ध्यान में लगना, प्रोषध प्रतिमा है। मध्यम 12 पहर और जघन्य 8 पहर का प्रोषध होता है। एक पहर 3 घंटे का होता है।

5. सचित्तत्याग प्रतिमा-हरी वनस्पति अर्थात् कच्चे व पके हुये फल, फूल, बीज, पत्ते, पानी वगैरह न खाना, इनको अग्नि में पकाकर ही खाना, उसे सचित्तत्याग प्रतिमा कहते हैं।

जिसमें जीव होते हैं, उसे सचित्त कहते हैं। अतएव जीव रहित पदार्थों का भक्षण करना, सचित्तत्याग प्रतिमा है।

6. रात्रिभोजनत्याग प्रतिमा-कृत, कारित, अनुमोदना से और मन वचन काय से रात्रि में सभी प्रकार के आहार का त्याग करना अर्थात् सूर्यास्त के दो घड़ी पहले से सूरज निकलने के दो घड़ी पीछे तक चार प्रकार के आहार का त्याग करना रात्रिभोजनत्याग प्रतिमा है।

7. ब्रह्मचर्य प्रतिमा-मन, वचन, काय से स्त्री मात्र का त्याग करना ब्रह्मचर्य प्रतिमा है।

8. आरम्भत्याग प्रतिमा-मन, वचन, काय से और कृत, कारित, अनुमोदना से गृहकार्य तथा आजीविका सम्बन्धी सब तरह की क्रियाओं का त्याग करना, आरम्भत्यागप्रतिमा है। आरम्भत्याग प्रतिमा वाला स्नान, दान, पूजन वगैरह कर सकता है।

9. परिग्रहत्याग प्रतिमा-धन धान्यादि परिग्रह को पाप का कारण रूप जानते हुए, अति आवश्यक परिग्रह के अलावा समस्त परिग्रह को छोड़ना, परिग्रहत्यागप्रतिमा है।

10. अनुमतित्याग प्रतिमा-गृहस्थाश्रम के किसी भी कार्य का अनुमोदन नहीं करना अनुमतित्यागप्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी उदासीन होकर घर में या चैत्यालय या मठ वगैरह में बैठता है। घर पर या और जो कोई श्रावक भोजन के लिए बुलावे उसके यहाँ भोजन कर आता है। किन्तु अपने मुँह से यह नहीं कहता कि मेरे वास्ते वह चीज बनाओ।

11. उद्दिष्टत्यागप्रतिमा-घर छोड़कर वन में या मठ वगैरह में तपश्चरण करते हुए रहना, खण्डवस्त्र धारण करना, बिना याचना किये भिक्षावृत्ति से योग्य उचित आहार लेना, अपने लिये भोजन बनवाने का या बने हुये का त्याग करना, उद्दिष्टत्यागप्रतिमा है। इस प्रतिमा के धारी क्षुल्लक और ऐलक होते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. प्रतिमा किसे कहते हैं और उसके कितने भेद हैं?
2. अमुक प्रतिमा का स्वरूप बताइए।
3. सामायिक विधि समझाइए।
4. उद्दिष्टत्यागप्रतिमा के धारी कौन होते है?

पाठ-7

वारिषेण

मगध देश के राजगृह नगर में राजा श्रेणिक रहता था। उनकी रानी का नाम चेलना था। उन दोनों के वारिषेण नाम का पुत्र था। वारिषेण उत्तम श्रावक था। एक बार वह उपवास धारण कर चतुर्दशी की रात्रि में श्मशान में कायोत्सर्ग से खड़ा था। उसी दिन बगीचे में गई हुई मगध सुन्दरी वेश्या ने श्रीकीर्ति सेठानी के द्वारा पहिना हुआ हार देखा। तदनन्तर उस हार को देखकर 'इस आभूषण के बिना मुझे जीवन से क्या प्रयोजन है' ऐसा विचार कर वह शय्या पर पड़ रही। उस वेश्या में आसक्त विद्युच्चरचोर जब रात्रि के समय उसके घर आया तब उसे शय्या पर देख बोला कि प्रिये इस तरह क्यों पड़ी हो? वेश्या ने उससे कहा कि यदि श्रीकीर्ति सेठानी का हार मुझे देते हो तो मैं जीवित रहूँगी और तुम मेरे पति होगे अन्यथा नहीं। वेश्या के यह वचन सुनकर तथा उसे आश्वासन देकर विद्युच्चरचोर आधी रात के समय श्रीकीर्ति सेठानी के घर गया और अपनी चतुराई से हार चुराकर बाहर निकल आया। हार के प्रकाश से 'यह चोर है' ऐसा जानकर गृह के रक्षकों तथा कोतवालों ने उसे पकड़ना चाहा। जब वह चोर भागने में असमर्थ हो गया तब वारिषेण कुमार के आगे उस हार को डालकर छिपकर बैठ गया। कोतवालों ने उस हार को वारिषेण के आगे पड़ा देखकर राजा श्रेणिक से कह दिया कि राजन्! वारिषेण चोर है। यह सुनकर राजा ने कहा कि उस मूर्ख का मस्तक काटकर लाओ। चाण्डाल ने वारिषेण का मस्तक काटने के लिये ज्यों ही तलवार चलाई, वह उसके गले में फूलों की माला बन गई। इस अतिशय को सुनकर राजा श्रेणिक ने जाकर

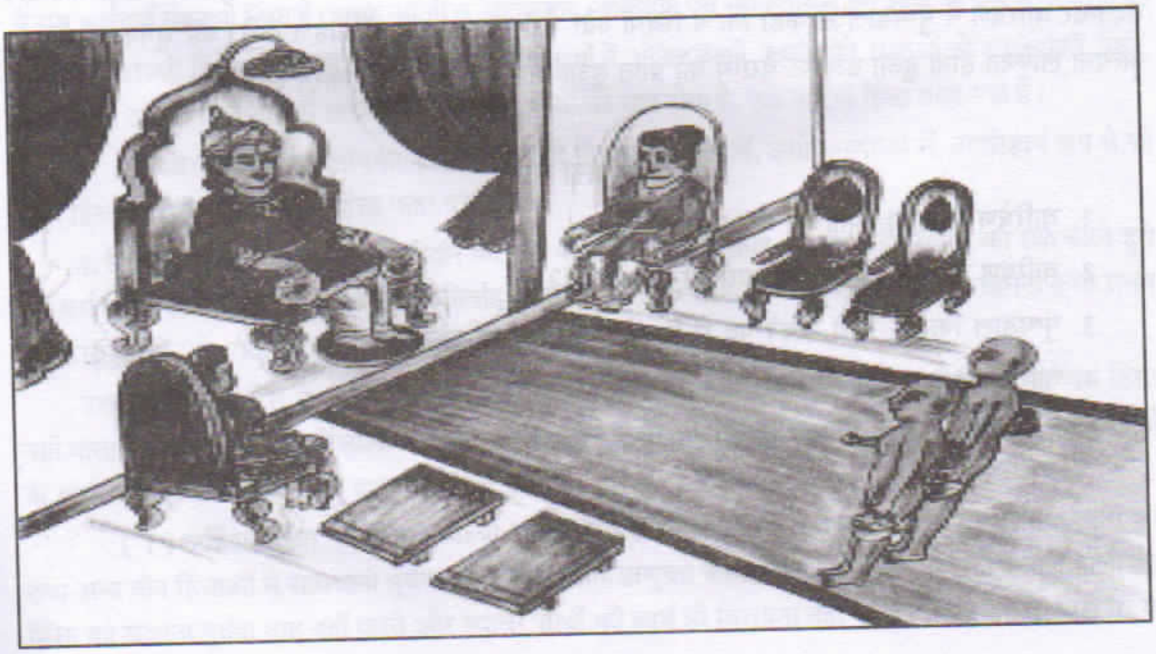

वारिषेण से क्षमा मांगी। विद्युच्चरचोर ने अभयदान पाकर राजा से जब अपना सब वृत्तान्त कहा तब वह वारिषेण को घर ले जाने के लिये उद्यत हुआ। परन्तु वारिषेण ने कहा कि अब तो मैं पाणिपात्र में भोजन करूँगा अर्थात् दिगम्बर मुनि बनूँगा। तदनन्तर वह सूरसेन गुरु के समीप मुनि हो गया।

एक समय वे मुनि राजगृह के समीपवर्ती पलाशकूट ग्राम में चर्या के लिये प्रविष्ट हुये। वहाँ राजा श्रेणिक के अग्निभूति मंत्री के पुत्र पुष्पडाल ने उनका पड़गाहन किया। चर्या कराने के बाद वह अपनी सोमिल्ला नामक स्त्री से पूछकर स्वामी का पुत्र तथा बाल्यकाल का मित्र होने के कारण कुछ दूर तक भेजने के लिए मुनि वारिषेण के साथ चला गया। अपने लौटने के अभिप्राय से वह क्षीरवृक्ष आदि को दिखाता तथा बार-बार मुनि को वन्दना करता था। परन्तु मुनि हाथ पकड़कर उसे साथ ले गये और धर्म का विशिष्ट उपदेश सुनाकर तथा वैराग्य उपजाकर उन्होंने उसे तप ग्रहण करा दिया। तप धारण करने पर भी वह सोमिल्ला स्त्री को नहीं भूलता था।

पुष्पडाल और वारिषेण दोनों ही मुनि बारह वर्ष तक तीर्थयात्रा कर भगवान् वर्धमान स्वामी के समवशरण में पहुँचे। वहाँ वर्धमान स्वामी और पृथ्वी से सम्बन्ध रखने वाला एक गीत देवों के द्वारा गाया जा रहा था उसे पुष्पडाल ने सुना। गीत का भाव यह था कि जब पति प्रवास को जाता है तब स्त्री खिन्न चित्त होकर मैली कुचैली रहती है परन्तु जब वह घर छोड़कर ही चल देता है तब वह कैसे जीवित रह सकती है।

पुष्पडाल ने यह गीत अपने तथा सोमिल्ला के सम्बन्ध में लगा लिया इसलिये वह उत्कण्ठित होकर चलने लगा। वारिषेण मुनि यह जानकर उसका स्थितिकरण करने के लिये उसे अपने नगर ले गये। चेलना ने उन दोनों मुनियों को देखकर विचार किया कि वारिषेण क्या चारित्र से विचलित होकर आ रहा है? परीक्षा करने के लिये उसने दो आसन दिये-एक सराग और दूसरा वीतराग। वारिषेण ने वीतराग आसन पर बैठकर कहा कि हमारा अन्तःपुर बुलाया जावे। महारानी चेलना ने आभूषणों से सजी हुई उसकी बत्तीस स्त्रियाँ बुलाकर खड़ी कर दी। तदनन्तर वारिषेण ने पुष्पडाल से कहा कि ये स्त्रियाँ और मेरा युवराज पद तुम ग्रहण करो। यह सुनकर पुष्पडाल अत्यन्त लज्जित होता हुआ उत्कृष्ट वैराग्य को प्राप्त हुआ और परमार्थ से तप करने लगा।

अभ्यास प्रश्न

1. वारिषेण के माता-पिता का क्या नाम था ?
2. वारिषेण ने किन मुनिराज के पास मुनि दीक्षा ली?
3. पुष्पडाल किसके लिये अपने पद से विचलित हो रहा था और क्यों?
4. वारिषेण ने पुष्पडाल को किस तरह समझाया ?
5. उस चोर का क्या नाम था? जिसने सेठानी का हार चुराया था।

पाठ-8

अहिंसा

अहिंसा मानसिक पवित्रता का नाम है। उसके व्यापक क्षेत्र में सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि सभी गुण समा जाते हैं। इसलिए अहिंसा को परमधर्म कहा गया है। जीव का अपने साम्यभाव में संलग्न रहना अहिंसा है। अहिंसा केवल एक व्रत नहीं है वरन् अहिंसा एक विचार एक समग्र चिन्तन है। अहिंसा किसी मंदिर में या तीर्थ पर जाकर सुबह शाम सम्पन्न किया जाने वाला कोई अनुष्ठान नहीं है। वह आठों पहर चरितार्थ किया जाने वाला एक सम्पूर्ण जीवनदर्शन है। वह संसार के सभी धर्मों का मूल है।

अहिंसा एक ऐसा निर्मल परिणाम (भाव) है, जिसके प्रकट होने पर शेर और गाय एक घाट पर बैठकर पानी पीते हैं। वह एक आंतरिक प्रकाश है, जिससे मानवता की शाश्वत ज्योति प्रकट होती है, जो तिरोहित नहीं हो सकती। अहिंसा को समझने के लिये पहले हिंसा को समझना आवश्यक है। कषाय भाव के उत्पन्न होने पर आत्मा के उपयोग की शुद्धता का घात होना, भावहिंसा है और कषायभाव के निमित्त से अपने अथवा पराये प्राणों का घात होना, द्रव्य हिंसा है। यह सृष्टि सूक्ष्म और स्थूल जीवों से ठसाठस भरी हुई है। यहाँ कोई भी स्थान जीव विहीन नहीं है। इसलिये मनुष्य को पूर्ण अहिंसक हो पाना संभव नहीं है। मन, वचन और काय की प्रवृत्ति होती रहे और हिंसा न हो ऐसा संभव नहीं है। ऐसी स्थिति में हिंसा से बचकर अहिंसा की ओर जीवन को अग्रसर करने के लिये आचार्यों ने अल्पतम हिंसा वाली जीवनपद्धति का आविष्कार किया है। अत: व्यवहारिक ढंग से वर्गीकरण करके हिंसा के चार भेद किये हैं।

1. **संकल्पी हिंसा**-संकल्प पूर्वक किसी प्राणी को पीड़ा देना या उसका वध करना संकल्पी हिंसा है। जैसे-धर्म के नाम पर बलि चढ़ाने के लिये, शिकार वगैरह का शौक तथा फैशन को पूरा करने के लिये जो जीवों का वध किया जाता है, ये सब प्रवृत्तियाँ संकल्पी हिंसा हैं। इसके अतिरिक्त आतंकवाद, जातिवाद एवं साम्प्रदायिक दंगे आदि भी इसी में अन्तर्भूत हैं।

2. **आरम्भी हिंसा**-अपने जीवन के लिये अनिवार्य कार्यों में, भोजन बनाने, नहाने धोने, वस्तुओं को उठाने रखने, उठने, बैठने, सोने तथा चलने फिरने में अपरिहार्य रूप से जो जीवों का घात होता है, उसे आरंभी हिंसा कहा गया है।

3. **उद्योगी हिंसा**-आजीविका उपार्जन के लिये नौकरी में, खेती में, उद्योग-व्यापार में, अपरिहार्य रूप से जो जीव हिंसा होती है, उसे उद्योगी हिंसा कहा गया है।

4. **विरोधी हिंसा**-अपने कुटुम्ब परिवार की रक्षा करते हुये, अपने शील-सम्मान और संपत्ति की रक्षा करते हुये एवं धर्म तथा देश के प्रति अपने दायित्वों का निर्वाह करते हुये किसी आततायी या आक्रमणकारी का सामना करते समय जो हिंसा करनी पड़े, वह विरोधी हिंसा है।

उक्त चारों हिंसाओं में से श्रावक केवल संकल्पी हिंसा का त्याग कर सकता है। स्थावर जीवों की भी व्यर्थ हिंसा नहीं करता। यद्यपि बाकी तीन हिंसाओं का सर्वथा त्याग गृहस्थी में रहते हुये नहीं कर सकता है, तो भी उसको सब कार्यों के करने में यत्न और नीति से ही व्यवहार करना चाहिए।

(1) **अहिंसाणुव्रत** -उपरोक्त संकल्पी आदि चार प्रकार हिंसाओं में से संकल्पी हिंसा का पूर्णतया त्याग कर तथा अन्य तीन हिंसाओं में सावधानी पूर्वक प्रवृत्त होना, अहिंसाणुव्रत कहलाता है। इसको धारण करने वाले प्राणी त्रस हिंसा का संकल्प पूर्वक घात नहीं करते और स्थावर जीवों की व्यर्थ ही विराधना नहीं करते हैं। इस व्रत के धारी घर के

कार्यों में निरन्तर सावधानी रखते हुए जीव हिंसा से बचने का प्रयास करते हैं। अनावश्यक अग्नि जलाना, बिजली के पंखे आदि चलाना, जमीनादि को अनावश्यक खोदना, स्नानादि में बहुत जल प्रयोग करना आदि नहीं करते हैं। वे ऐसे व्यापार भी कभी नहीं करते हैं, जिनमें बहुत जीवों की हिंसा होती है। इस व्रत के धारी जीव आजीविका के लिये अधिकांश कपड़े का, सर्राफे का, ज्वेलरी आदि का व्यापार करते हैं, जिसमें हिंसा बहुत कम होती है। उनका अभिप्राय बहुत धन कमाना न होकर आजीविका के लिये आवश्यक धन कमाना मात्र होता है। इस व्रत का धारी दूसरे के राज्यों को हड़पने के लिये कभी युद्ध नहीं करता है, वह अपने राज्यादि की रक्षा का अवसर आने पर युद्धादि से बचने का पूर्ण प्रयास करता है। यदि प्रयास सफल न हो तो उसे युद्ध करना पड़ता है। इस व्रत के धारी जीव अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण भी नहीं करते क्योंकि उनमें त्रस जीव पाये जाते हैं। चलते समय उनका अभिप्राय पृथ्वी पर जीव देखकर सावधानी पूर्वक चलना होता है। भैंसों की लड़ाई, मुर्गों की लड़ाई आदि भी नहीं देखते। रेशमी वस्त्रादिक चमड़े के जूते-चप्पल नहीं पहनते। सौन्दर्य प्रसाधन में भी उन्हीं वस्तुओं का प्रयोग करते है, जो हिंसा पूर्वक बनी हुई नहीं होती है। मंजनादि के लिये भी पेष्टादि इस्तेमाल नहीं करते हैं। दवाई आदि लेते समय भी कैप्सूल वाली दवाईयाँ नहीं लेते हैं, क्योंकि ये कैप्सूल हिंसक पदार्थों से निर्मित होते हैं। घास पर नहीं चलते हैं। पशुओं की शक्ल के बनाये हुए शक्कर के खिलौने को नहीं खाते हैं। स्थूल झूठ, चोरी, कुशील तथा परिग्रह संचय के पापों से दूर रहते हैं। शराब, मांसादि निंद्य पदार्थों का उत्पादन या व्यापार करने वालों के शेयर नहीं खरीदते हैं। रात्रि में भोजन नहीं करते हैं। अनछना पानी नहीं पीते हैं। इस व्रत में एक देश हिंसा त्याग किया जाता है। जो हिंसा का पूर्णतया त्याग न कर सके, उनको यह व्रत अवश्य धारण करना चाहिए।

(2) अहिंसा महाव्रत-जो मुनिराज त्रस एवं स्थावर जीवों की हिंसा का मन,वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से पूर्णतया त्याग कर देते हैं, उनके अहिंसा महाव्रत होता है। ऐसे मुनिराज जीवों की हिंसा से बचने के लिये हमेशा अपने पास मयूर पंख की पीछी रखते हैं। वे जब भी कोई पुस्तक, पीछी या कमण्डलु रखते या उठाते हैं। तब देख शोधकर तथा पीछी से जीवों को हटाकर ही ग्रहण करते हैं। मल-मूत्र करने से पूर्व उस स्थान को पीछी से जीव रहित या प्रासुक कर लेते हैं। रात्रि में गमन नहीं करते यदि करना पड़ जाये तो पीछी से जीवों को सावधानी से हटाते हुए थोड़ा मजबूरी में कभी चलते हैं। दिन के प्रकाश में चार हाथ जमीन देखकर गमन करते हैं। थोड़ा मीठा और प्रिय बोलते हैं। ताकि किसी के दिल को दु:ख न पहुँचे। जीव-जन्तु से रहित प्रासुक निर्दोष आहार को अच्छी प्रकार शोध कर लेते हैं। पूर्ण अहिंसा के लिये झूठ, चोरी, कुशील तथा परिग्रह का पूर्णतया त्याग कर देते हैं। इस व्रत का धारी मुनि 28 मूलगुणों का धारी होता है। जिनमें से मुख्य मूलगुण अहिंसा महाव्रत ही है। अन्य सभी मूलगुण इस मूलगुण के सहायक ही हैं। ये मुनिराज शौचादि की शुद्धि के लिये जीव रहित प्रासुक जल ही ग्रहण करते हैं। और कभी स्नान नहीं करते हैं। वर्षा ऋतु के चार महिनों में जीव हिंसा से बचने के लिये, एक ही स्थान पर चार माह तक रहते हैं। और कम से कम गमनादि क्रिया करते हैं।

हम सभी को उपरोक्त प्रकार से हिंसा तथा अहिंसा के बारे में जानकारी करके शक्ति अनुसार हिंसा से बचना चाहिए और अहिंसा धारण करनी चाहिए। सभी व्रतों में अहिंसा व्रत को मुख्य कहा गया है। इस एक के नहीं पालने पर अन्य व्रत नहीं पलते हैं। वास्तव में अहिंसा का नाम ही धर्म है। इसलिये कहा गया है 'अहिंसा परमो धर्म:'।

अभ्यास प्रश्न

1. अहिंसा किसे कहते हैं ?
2. गृहस्थ अहिंसा का पालन कैसे कर सकता है?
3. हिंसा के विभिन्न रूपों को बताइए।
4. हमें इस पाठ से क्या शिक्षा मिलती है?
5. अहिंसा महाव्रत किसे कहते हैं?

पाठ-9

राजा श्रेणिक

मगधदेश के अन्तर्गत राजगृही नगर में उपश्रेणिक नामक राजा राज्य करते थे। उनकी पटरानी का नाम इन्द्राणी था। एक दिन इस दम्पत्ती के यहाँ एक बालक का जन्म हुआ, जिसका नाम श्रेणिक रखा गया। महाराजा उपश्रेणिक के पाँच सौ पुत्र और भी थे। राज्यपद के लिये सभी पुत्रों की परीक्षा ली गई, जिसमें श्रेणिक सफल हुये। राजा की आज्ञा पाकर मतिसागर आदि मंत्रियों ने षडयंत्र पूर्वक श्रेणिक को नगर से बाहर जाने को मजबूर कर दिया। तब मार्ग में उनकी मित्रता इन्द्रदत्त सेठ से हो गई और उनका विवाह सेठ की पुत्री नन्दश्री के साथ हो गया। उसी समय उनकी मुलाकात बौद्ध सन्यासियों के संघ से हुई। उनसे प्रभावित होकर उन्होंने भक्तिभाव पूर्वक बौद्धधर्म को धारण कर लिया।

कुछ समय बाद महाराज उपश्रेणिक का देहांत हो गया। तब चिलाती को राजा बनाया गया। राज्य पाते ही वह उत्पाती एवं उच्छृंखल हो गया। तब उसके अत्याचारों से परेशान होकर मंत्रियों ने कुशल दूत के माध्यम से पिता की मृत्यु और चिलाती के अत्याचार के विषय में एक पत्र श्रेणिक को लिखा,समाचार पाते ही श्रेणिक शीघ्र राजगृही आ गये। श्रेणिक की वीरता और तेजस्विता से डरकर, थोड़ा धन लेकर चिलाती दुर्ग में छिप गया। राजमंत्रियों के परामर्श से राजा श्रेणिक का राज्याभिषेक किया गया। कुछ दिनों बाद राजा श्रेणिक का विवाह केरला के राजा मुगाड की पुत्री विलासवती से हुआ। इसी प्रकार राजा चेटक की पुत्री चेलना के साथ भी मंगल विवाह किया। रानी चेलना जैनधर्म की अनुयायी थी।

एक दिन महल में बौद्धगुरु पधारे और रानी चेलना को समझाने लगे कि बौद्ध धर्म ही तुम्हारा कल्याण करेगा,जैनधर्म नहीं। संसार में समस्त उत्तम मनुष्य इसी कल्याणकारी धर्म की सेवा करते हैं, अत: तू भी बुद्ध की शरण ग्रहण करके स्वर्ग और मोक्ष की अधिकारी बन। तब चेलना बोली कि यह बात समझ में नहीं आती कि दिगम्बर साधुओं की सेवा करने से अगले भव में क्लेश और बौद्ध गुरुओं की सेवा से स्वर्ग मोक्ष की प्राप्ति होती है। तब बौद्ध गुरुओं ने कहा कि हम सर्वज्ञ हैं अत: हमें परलोक सम्बन्धी ज्ञान सर्वदा स्पष्ट रहता है। तुम हमारे कथन पर श्रद्धान रखो। तब चेलना ने कहा-कल आप सभी लोगों का मेरे यहाँ आहार ग्रहण करने का निमंत्रण है। आप सर्वज्ञ सदृश लोगों को भोजन कराकर मैं कल ही बौद्ध धर्म ग्रहण कर लूंगी।

रानी चेलना ने भोजन में उत्तम से उत्तम पकवान बनाये। बौद्धगुरुओं के आने पर उच्चासन प्रदान किया। बौद्धगुरु स्वर्ण पात्रों में परोसे गये भोजन में तल्लीन हो गये, तभी चेलना ने चतुर दासी से बौद्धगुरुओं के दांयें पैर के जूते मंगवा लिये तथा उनके छोटे-छोटे टुकड़े कर छांछ में मसाले के साथ डालकर सबको स्वादिष्ट जायकेदार रायते के रूप में प्रस्तुत किया। सभी गुरुओं ने उसे बड़े प्रसन्नता के साथ ग्रहण किया। भोजन से निवृत्त होकर बौद्ध गुरु रानी की प्रशंसा करने लगे और कहा कि अब तुम अनुपयोगी जैनधर्म को त्यागकर आत्मा को पवित्र करने के लिये बौद्धधर्म धारण कर लो।

रानी ने उन्हें तिरस्कारित करते हुये उनकी सर्वज्ञता का भण्डाफोड़ कर दिया, तब सभी गुरु लज्जित हो गये और उन्होंने अपने सर्वज्ञ होने की बात ठुकरा दी। वापस जाते समय जूतों के विषय में पूछे जाने पर रानी चेलना ने

यथार्थ घटित घटना बता दी। तब सभी गुरु क्रोधित होकर राजा के पास गये।

जब राजा ने बौद्ध गुरुओं के विषय में रानी चेलना से कुछ कहा तब युक्ति युक्त एवं न्यायसंगत उत्तर को सुनकर श्रेणिक प्रतिवाद करने में असमर्थ हुये, जिससे उनके हृदय में अपने गुरुओं के अपमान के क्रोध का भाव विद्यमान रहा।

एक दिन राजा श्रेणिक क्रीड़ा के लिये वन में गये। वहाँ महामुनि यशोधर को देखते ही, रानी चेलना को सबक सिखाने की दृष्टि से उन पर उपसर्ग किया। राजा श्रेणिक ने महामुनि के ऊपर 500 प्रशिक्षित कुत्ते छोड़ दिये परन्तु वे मन्त्र मुग्ध होकर मुनिराज के चरणों में शान्त होकर बैठ गये। तब राजा इतना क्रोधित हो गया कि उसने मुनि को मारने के लिये तलवार निकाल ली परन्तु वह उसमें सफल नहीं हुआ। तब अन्त में मरा हुआ सर्प गले में डालकर वापस अपने राज्य में आ गया। इस दुष्कृत्य के कारण उन्होंने सप्तम नरक की 33 सागर की आयु का बंध किया। महल में आते ही उसने पूरा वृत्तान्त बौद्ध गुरुओं को कह सुनाया,तब बौद्ध गुरुओं ने उसके कार्य की प्रशंसा की। घटना के चार दिन के बाद राजा, रानी चेलना के महल में गये और अपने दुष्कर्म का वर्णन करने में फूले नहीं समाये तब रानी चेलना विलाप कर कहने लगी कि हे राजन्! दिगम्बर जैन साधु सामान्य व्यक्ति नहीं होते हैं, जो विपत्ति को देखकर विचलित हो जायें। वे उपसर्ग ही क्या, महाउपसर्गों में भी तिल भर नहीं डिगते हैं।

राजा और रानी शीघ्र ही वन में मुनिराज के निकट जा पहुँचे। सर्वप्रथम रानी ने मुनिराज को देखते ही ग्रीवा (गर्दन) से मृत सर्प को निकाला। तत्पश्चात् शक्कर आदि के माध्यम से चींटी आदि को अलग किया, फिर एक वस्त्र को उष्ण जल से भिगोकर मुनिराज के घाव धोये,फिर पीड़ा के शमनार्थ लेप कर दिया और अन्त में तीन प्रदक्षिणा देकर यथास्थान बैठ गयी। इसे देखकर राजा श्रेणिक की दृष्टि ही बदल

गई। जब मुनिराज ध्यान से बाहर आये तो उन्होंने दोनों को समान उपदेश एवं आशीर्वाद प्रदान किया। राजा ने मुनिराज के चरणों में झुक आत्मग्लानि पूर्वक प्रायश्चित किया और जैनधर्म को पुनः धारण किया। जिससे उनकी नरकायु 84 हजार मात्र घटकर रह गई।

एक बार राजा श्रेणिक भगवान् महावीर के समवशरण में पहुँचे। वहाँ भगवान् को नमस्कार कर उनकी दिव्य देशना का रसास्वादन किया। राजा श्रेणिक भगवान् महावीर के समवशरण में प्रमुख श्रावक के रूप में विद्यमान थे। उन्होंने भगवान् महावीर से 60000 प्रश्नों को पूछा। उन्होंने समवशरण में ही सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया।

जब राजा श्रेणिक अपने दरबार में आनन्द के साथ राज्य कार्य कर रहे थे,तब संसार की वास्तविकता को समझकर उनके पुत्र अभयकुमार ने सब परिग्रह त्यागकर विपुलाचल पर्वत पर भगवान् महावीर के समवशरण में जिनदीक्षा धारण कर ली और कठोर तपस्या के प्रभाव से केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष पद को प्राप्त किया। इसीप्रकार एक दिन राजा श्रेणिक ने भी अपने मन में विचार किया कि अब धर्म का मार्ग ग्रहण करना चाहिये। तब रानी चेलना के ज्येष्ठ पुत्र कुणिक को राज्यभार सौंप दिया, कुणिक ने शासन तो पिता से भी श्रेष्ठ किया परन्तु पूर्व जाति स्मरण से उसने अपने पिता को बंदी बना लिया। तब रानी चेलना के समझाने पर कुणिक को अपनी गलती का पश्चाताप हुआ और वह पिता को मुक्त करने के लिये बंदीगृह गया। राजा कुणिक को निकट आता देख, दुःखी एवं भयभीत राजा श्रेणिक का मरण हो गया। कालान्तर में रानी चेलना ने समवशरण में जाकर आर्यिका दीक्षा धारण कर ली और तपस्या के प्रभाव से देव पद को प्राप्त किया।

विशेष :-तीर्थंकर प्रकृति के बंध के प्रभाव से राजा श्रेणिक भविष्य में आने वाले उत्सर्पिणी काल में पद्मनाभ नाम के प्रथम तीर्थंकर होंगे।

अभ्यास प्रश्न

1. राजा श्रेणिक के माता-पिता का क्या नाम था?
2. राजा उपश्रेणिक की मृत्यु के बाद किसे राजा बनाया गया ?
3. राजा श्रेणिक का विवाह किससे हुआ ?
4. राजा श्रेणिक ने किन मुनिराज के ऊपर उपसर्ग किया था?
5. राजा श्रेणिक को तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कब हुआ था?

पाठ-10

ध्यान

किसी एक आलम्बन पर मन को केन्द्रित करना ध्यान है। ध्यान के चार भेद हैं-आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्म्यध्यान, शुक्लध्यान। इनमें आदि के दो ध्यान अशुभ है उनसे पाप का बंध होता है। शेष ध्यान शुभ हैं, उनके द्वारा कर्मों का नाश होता है।

(1) आर्तध्यान - आर्त शब्द का अर्थ है-पीड़ा या दुःख अर्थात् दुःख में होने वाले ध्यान को आर्तध्यान कहते हैं। उसके चार भेद हैं :-

1. इष्ट का वियोग होने पर उसकी प्राप्ति के लिये बार-बार चिन्तन करना इष्ट वियोगज आर्तध्यान है। जैसे- किसी प्रिय वस्तु को खो जाने पर उसकी प्राप्ति का निरंतर चिन्तन करना।

2. अनिष्ट का संयोग होने पर उसको दूर करने का बार-बार चिन्तन करना अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान है। जैसे किसी गलत किरायेदार के मिल जाने पर उसको हटाने का निरंतर चिन्तन करना।

3. शरीर में रोग की पीड़ा होने पर उसे दूर करने का बार-बार चिन्तन करना पीड़ा चिन्तन आर्तध्यान है। जैसे कैंसर आदि हो जाने पर उसको इलाज कराने का निरंतर चिन्तन करना।

4. आगामीकाल में सांसारिक सुखों की इच्छा करना निदान आर्तध्यान है। जैसे- इस भव में लखपति करोड़पति बनने का तथा अगले भव में देवपर्याय प्राप्त करने का निरंतर चिन्तन करना।

(2) रौद्रध्यान - रौद्र शब्द का अर्थ क्रूर है। अर्थात् क्रूर परिणामों को रौद्र ध्यान कहते है। इसके चार भेद हैं :-

1. हिंसा में आनन्द मानना हिंसानंदी रौद्रध्यान है।
2. झूठ बोलने में आनन्द मानना मृषानंदी रौद्रध्यान है।
3. चोरी करने में आनन्द मानना चौर्यानंदी रौद्रध्यान है।
4. परिग्रह के संचय व रक्षण में आनन्द मानना परिग्रहानंदी रौद्रध्यान है।

(3) धर्म्यध्यान -पवित्र विचारों में मन को स्थिर रखना धर्म्य ध्यान है। इसके चार भेद हैं :-

1. आगम के अनुसार तत्त्वों का विचार करना और जिनेन्द्र भगवान् के कहे अनुसार उनकी आज्ञा मानना, आज्ञाविचय धर्म्य ध्यान है।

2. अपने तथा दूसरों के राग-द्वेष-मोह आदि विकारों को नाश करने का चिन्तन करना अपायविचय धर्म्य ध्यान है।

3. अपने तथा दूसरों के सुख-दुःखों को देखकर कर्मप्रकृतियों के स्वरूप का चिन्तन करना विपाकविचय धर्म्य ध्यान है।

4. लोक के स्वरूप का चिन्तन करना संस्थानविचय धर्म्यध्यान है।

धर्म्यध्यान के अन्य भेद

शरीर में स्थित आत्मा का चिन्तन पिण्डस्थ ध्यान है, मंत्रपदों के द्वारा पंचपरमेष्ठी तथा आत्मा के स्वरूप का चिन्तन करना पदस्थ ध्यान है, समवशरण में विराजमान अरिहन्त परमेष्ठी के स्वरूप का चिन्तन करना रूपस्थ ध्यान है। तथा सिद्धपरमेष्ठी के गुणों का चिन्तन करना रूपातीत धर्म्य ध्यान है।

इसी प्रकार धर्म्य ध्यान के दश भेद भी किये गये है-आज्ञाविचय, अपायविचय, उपायविचय,जीवविचय, भवविचय, विपाकविचय, विरागविचय, हेतुविचय, अजीवविचय, संस्थानविचय।

(4) **शुक्लध्यान** :-मन की अत्यन्त निर्मलता होने पर जो एकाग्रता होती है वह शुक्लध्यान है। यह परिपूर्ण समाधि की स्थिति है, इसीध्यान से आत्मानुभूति के द्वार खुलते है। शुक्लध्यान के चार भेद हैं-

1. श्रुतज्ञान के आधार पर अनेक द्रव्य-गुण और पर्यायों का योग व्यंजन एवं ध्येयगत पदार्थ के परिवर्तन पूर्वक चिन्तन पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान है।

2. श्रुतज्ञान के आधार पर एक ही द्रव्यगुणपर्याय का योग और श्रुतवाक्यों के परिवर्तन से रहित चिन्तन होता है,वह एकत्ववितर्कअवीचार शुक्लध्यान है।

3. वितर्क और वीचार से रहित इस ध्यान में मन-वचन और काय रूप योगों का निरोध हो जाता है मात्र सूक्ष्म काययोग शेष रहता है। यहाँ तक कि श्वासोच्छ्वास जैसी सूक्ष्मक्रिया भी इस ध्यान में निरुद्ध हो जाती है। सूक्ष्मक्रियाओं के भी निरोध से होने के कारण इसे सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति कहते हैं।

4. जिस ध्यान के प्रताप से शेष सर्वकर्मों का नाश हो जाता है तथा आत्मा देहमुक्त होकर अपनी स्वाभाविक ऊर्ध्वगति से लोक के अग्रभाग तक जाकर शरीरातीत अवस्था के साथ स्थिर हो जाती है। उसे व्युपरतक्रिया निवृत्ति शुक्लध्यान कहते हैं।

आर्त और रौद्र ध्यान दुर्गति के कारण हैं मोक्षमार्ग में इनका कोई स्थान नहीं है, न ही ऐसे ध्यान तप की कोटि में आते हैं, ये दोनों ध्यान संसार के हेतु हैं। इनसे विपरीत धर्म्यध्यान व शुक्लध्यान ही वास्तविक रूप से आत्मकल्याण में सहायक होते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. ध्यान किसे कहते हैं एवं भेदों के नाम बताइए।
2. रौद्रध्यान का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
3. धर्म्यध्यान के अन्य भेद बताइए।
4. मोक्ष के लिए कौन सा ध्यान कार्यकारी है?
5. दुर्गति के कारण कौन से ध्यान हैं?

पाठ-11

श्रुतपंचमी पर्व

प्रतिवर्ष ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन जैन समाज में श्रुतपंचमी पर्व मनाया जाता है। इस पर्व को मनाने के पीछे एक इतिहास है। जो इस प्रकार है-

वीर निर्वाण संवत् 614 में आचार्य धरसेन काठियावाड़ स्थित गिरिनगर (गिरनारपर्वत) की चन्द्रगुफा में रहते थे। जब वे बहुत वृद्ध हो गये और अपना जीवन अल्प जाना, तब श्रुत की रक्षार्थ उन्होंने महिमानगरी में एकत्रित मुनिसंघ के पास एक पत्र भेजा। तब मुनि संघ ने पत्र को पढ़कर दो मुनियों को गिरनार भेज दिया। वे मुनि विद्याग्रहण करने में तथा उनका स्मरण रखने में समर्थ थे। अत्यन्त विनयी, शीलवान् तथा समस्त कलाओं में पारङ्गत थे।

जब वे दोनों मुनि गिरिनगर की ओर जा रहे थे तब श्री धरसेनाचार्य ने एक स्वप्न देखा कि दो श्वेत वृषभ आकर उन्हें विनयपूर्वक वन्दना कर रहे हैं। उस स्वप्न से उन्होंने जान लिया कि आने वाले दो मुनि विनयवान् एवं धर्मधुरा को वहन करने में समर्थ हैं। तब उनके मुख से अनायास ही "जयदु सुय देवदा" ऐसे आशीर्वादात्मक वचन निकल पड़े।

दूसरे दिन दोनों मुनियों ने आकर सर्वप्रथम विनयपूर्वक आचार्य चरणों की वन्दना की। दो दिन तक श्री धरसेनाचार्य ने उनकी परीक्षा की। परीक्षा के अनन्तर उन्होंने एक मुनि को एक अक्षर न्यून वाला और दूसरे मुनि को एक अक्षर अधिक वाला विद्यामंत्र देकर दो उपवास सहित साधने को कहा। ये दोनों मुनिराज गुरु के द्वारा दिये गये विद्यामंत्र को लेकर उनकी आज्ञा से नेमिनाथ तीर्थंकर की सिद्धभूमि पर जाकर नियमपूर्वक अपनी-अपनी विद्या को सिद्ध करने लगे। जब उनकी विद्या सिद्ध हो गई तब वहाँ पर उनके सामने दो देवियाँ प्रकट हुईं। उनमें से एक देवी की एक ही आँख थी तो दूसरी देवी के दाँत बड़े-बड़े थे।

देवियों को देखते ही मुनियों ने समझ लिया कि निश्चित ही मंत्र में कोई त्रुटि है और त्रुटि को शुद्ध कर उन्होंने पुनः विद्यामंत्र सिद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। जिसके फल स्वरूप देवियाँ अपने यथार्थ स्वरूप में प्रकट हुई तथा बोलीं हे नाथ! आज्ञा दीजिये-हम आपका क्या कार्य करें। तब दोनों मुनियों ने कहा-देवियों! हमारा कुछ भी कार्य नहीं है। हमने तो केवल गुरुदेव की आज्ञा से ही विद्यामंत्र की आराधना की है। यह सुनकर वे दोनों देवियाँ अपने स्थान पर चली गईं।

दोनों मुनियों की योग्यता को गुरु ने जान लिया कि सिद्धान्त का अध्ययन करने के लिए ये योग्य पात्र हैं। तब आचार्य श्री ने उन्हें सिद्धान्त का अध्ययन कराया। वह अध्ययन आषाढ़ शुक्ला एकादशी

को पूर्ण हुआ। उस दिन देवों ने उन दोनों मुनियों की पूजा की। एक मुनिराज के दाँतों की विषमता को दूर कर उनके दाँत कुन्दपुष्प के समान सुन्दर करके उनका पुष्पदंत नामकरण किया। और दूसरे मुनिराज की भी भूत जाति के देवों ने सूर्यनाद-जयघोष-गन्धमाला धूप आदि से पूजा कर ''भूतबलि'' नाम घोषित किया।

कुछ दिन बाद श्री धरसेनाचार्य ने अपनी मृत्यु का समय निकट जानकर शीघ्र ही योग्य उपदेश देकर दोनों मुनियों को कुरीश्वर नगर की ओर विहार करा दिया। तब भूतबलि और पुष्पदन्त मुनि ने अंकलेश्वर (गुजरात) में आकर वर्षाकाल (चातुर्मास) किया। वर्षाकाल बीतते ही पुष्पदंत आचार्य तो वनवास देश और भूतबलि द्रविड़ देश को विहार कर गये।

पुष्पदन्त मुनिराज महाकर्म प्रकृति प्राभृत का छह खण्डों में उपसंहार करना चाहते थे। अत: उन्होंने बीस अधिकार गर्भित सत्प्ररुपणा सूत्र को बनाकर शिष्यों को पढ़ाया और भूतबलि मुनि का अभिप्राय जानने के लिये जिनपालित को यह ग्रन्थ देकर उनके पास भेज दिया।

आचार्य पुष्पदंत एवं भूतबलि ने 6 हजार श्लोक प्रमाण 6 खण्ड बनाये। 1. जीवस्थान 2. क्षुद्रकबन्ध 3.बन्धस्वामित्व 4. वेदनाखण्ड 5. वर्गणाखण्ड और 6. महाबन्ध।

भूतबलि आचार्य ने इस षट्खण्डागम सूत्रों को ग्रन्थ रूप में बद्ध किया और ज्येष्ठ सुदी पंचमी के दिन चतुर्विध संघ सहित कृतिकर्मपूर्वक महापूजा की। उसी दिन से यह पंचमी श्रुतपंचमी नाम से प्रसिद्ध हो गयी। तब से लेकर लोग श्रुतपंचमी के दिन श्रुत की पूजा करते आ रहे हैं। आचार्य भूतबलि ने जिनपालित को षट्खण्डागम ग्रन्थ देकर आचार्य पुष्पदंत के पास भेजा। वे अपने चिन्तित कार्य को पूर्ण हुआ देखकर और श्रुत के अनुराग से चतुर्विध संघ के मध्य जिनवाणी महापूजा कर अत्यन्त हर्षित हुए।

श्रुत और ज्ञान की आराधना का यह महान् पर्व हमें वीतरागी सन्तों की वाणी, आराधना और प्रभावना का सन्देश देता है। इस दिन श्री धवल, महाधवलादि ग्रन्थों को विराजमान कर महामहोत्सव के साथ उनकी पूजा करना चाहिए। श्रुतपूजा के साथ सिद्धभक्ति और शान्तिभक्ति का भी इस दिन पाठ करना चाहिए। शास्त्रों की देखभाल, उनकी जिल्द आदि बनवाना, शास्त्र भण्डार की सफाई आदि करना, इस तरह शास्त्रों की विनय करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1. श्रुतपंचमी महापर्व कब मनाया जाता है?
2. आचार्य धरसेन ने किस परीक्षा के बाद मुनि भूतबलि और पुष्पदन्त को श्रुत का अध्ययन कराया था?
3. षट्खण्डागम किस तिथि को पूर्ण हुआ?
4. षट्खण्डागम के छह खण्डों के नाम बताइए।
5. भूतबलि व पुष्पदन्त आचार्य का नाम कैसे पड़ा?

पाठ-12

आलोचना-पाठ

बंदौं पांचों परम गुरु, चौबीसों जिनराज।
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरण के काज॥

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी।
तिनकी अब निर्वृत्ति काजा, तुम सरन लही जिनराजा॥
इक बे ते चउ इन्द्री वा, मनरहित-सहित जे जीवा।
तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदइ ह्वै घात विचारी॥
संरम्भ समारंभ आरंभ, मन वच तन कीने प्रारंभ।
कृत कारित मोदन करिकै, क्रोधादि चतुष्टय धरिकै॥
शत आठ जु इमि भेदन तैं, अघ कीने परिछेदन तैं।
तिनकी कहुं कोलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी॥
विपरीत एकांत विनयके, संशय अज्ञान कुनयके।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जाय कहीने॥
कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी।
या विधि मिथ्यात बढ़ायो, चहुंगति-मधि दोष उपायो॥
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, परवनिता सों दृगजोरी।
आरंभ परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विधि कीनो॥
सपरस रसना घ्रानन को, चखु कान विषय-सेवनको।
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय अन्याय न जाने॥
फल पंच उदम्बर खाये, मधु मांस मद्य चित चाये।
नहिं अष्ट मूलगुण धारे, विसयन सेये दुखकारे॥
दुइवीस अभख जिन गाये, सो भी निशदिन भुंजाये।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों-त्यों करि उदर भरायो॥
अनंतानुबंधी जु जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकडी गुनिये, सब भेद जु षोडश मुनिये॥

परिहास अरति रति शोग, भय ग्लानि तिवेद संयोग।
पनवीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम॥
निद्रावश शयन कराई, सुपने मधि दोष लगाई।
फिर जागि विषय-वनधायो, नानाविध विष-फल खायो॥
आहार विहार निहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
बिन देखी धरी उठाई, बिन सोधी वस्तु जु खाई॥
तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकलप उपजायो।
कछु सुधि बुधि नाहिं रही है, मिथ्यामति छाय गयी है॥
मरजादा तुम ढिंग लीनी, ताहू में दोस जु कीनी।
भिनभिन अब कैसे कहिये, तुम ज्ञानविषैं सब पइये॥
हा हा! मैं दुठ अपराधी, त्रसजीवन राशि विराधी।
थावर की जतन न कीनी, उरमें करुना नहिं लीनी॥
पृथिवी बहु खोद कराई, महलादिक जागां चिनाई।
पुनि विनगाल्यो जलढोल्यो, पंखातैं पवन बिलोल्यो॥
हा हा! मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी।
तामधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनंदा॥
हा हा! परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई।
तामधि जे जीव जु आये, ते हू परलोक सिधाये॥
बींध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन-सोधि जलायो।
झाडू ले जागां बुहारी, चिंवटाऽदिक जीव बिदारी॥
जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि-डारि जु दीनी॥
नहिं जल-थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई॥
जलमल मोरिन गिरवायो, कृमिकुल बहुघात करायो।
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये॥
अन्नादिक शोध कराई, तामें जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन कराया, गलियारैं धूप डराया॥
पुनि द्रव्य कमावन काजे, बहु आरंभ हिंसा साजे।
किये तिसनावश अघ भारी, करुना नहिं रंच विचारी॥

इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता।
संतति चिरकाल उपाई, बानी तैं कहिय न जाई॥
ताको जु उदय अब आयो, नानाविध मोहि सतायो।
फल भुँजत जिय दुख पावै, वचतैं कैसें करि गावै॥
तुम जानत केवलज्ञानी, दुख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरण लही है जिन तारन विरद सही है॥
इक गांवपती जो होवे, सो भी दुखिया दुख खोवै।
तुम तीन भुवनके स्वामी, दुख मेटहु अन्तरजामी॥
द्रोपदिको चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो।
अंजन से किये अकामी, दुख मेटो अन्तरजामी॥
मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद निहारो।
सब दोषरहित करि स्वामी, दुख मेटहु अन्तरजामी॥
इंद्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ।
रागादिक दोष हरीजे, परमातम निजपद दीजे॥

दोष रहित जिनदेवजी, निजपद दीज्यो मोय।
सब जीवन के सुख बढ़ै, आनंद-मंगल होय॥
अनुभव माणिक पारखी, 'जौहरी', आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरन-शरन आनन्द॥

भावना

हमारे कष्ट मिट जाएँ, नहीं यह प्रार्थना स्वामी!
डरें ना संकटों से हम, यही है भावना स्वामी!
दुःखों में साथ दे कोई, नहीं यह प्रार्थना स्वामी!
बनें सक्षम स्वयं ही हम, यही है भावना स्वामी!!1!!

रहे सुख की सदा छाया, नहीं यह प्रार्थना स्वामी!
खरे उतरें परीक्षा में, यही है भावना स्वामी!
हमारा भार घट जाए, नहीं यह प्रार्थना स्वामी!
किसी पर भार ना हों हम, यही है भावना स्वामी!!2!!

हमारी पूर्ण हो आशा, नहीं यह भावना स्वामी!
निराशा हो न अपने से, यही है भावना स्वामी!
सभी पीछे रहें हमसे, नहीं यह प्रार्थना स्वामी!
बढ़े आगे हमी से हम, यही है भावना स्वामी!!3!!

बढ़े धन-संपदा भारी, नहीं यह प्रार्थना स्वामी!
रहे संतोष थोड़े में, यही है भावना स्वामी!
दुखी हों दुष्ट-जन सारे, नही यह प्रार्थना स्वामी!
सभी दुर्जन बनें सज्जन, यही है भावना स्वामी!!4!!

करें बर्ताव सब अच्छा, नहीं यह प्रार्थना स्वामी!
सुधर जाएँ स्वयं ही हम, यही है भावना स्वामी!
दुखों में आपको ध्यायें, नहीं यह प्रार्थना स्वामी!
कभी ना आपको भूलें, यही है भावना स्वामी!!5!!

संस्थान द्वारा संचालित प्रमुख गतिविधियाँ

❑ महाकवि आचार्य ज्ञानसागर छात्रावास - जिसमें अंग्रेजी सहित कक्षा दशवीं के उत्तीर्ण छात्रों को प्रवेश देकर उन्हें धार्मिक एवं नैतिक संस्कारों से सुशोभित करते हुये जैनदर्शन एवं इच्छुक छात्रों को कम्प्यूटर शिक्षा, वास्तुशिल्प विज्ञान, ज्योतिष के अध्ययन के साथ ही संस्कृत, अंग्रेजी भाषा की प्रवीणता के लिये प्रशिक्षित शिक्षकों की व्यवस्था एवं प्रतियोगी परीक्षाओं के लिये विशेष दिशा निर्देश की भी सुविधा उपलब्ध है। धार्मिक अध्ययन सहित कुल पाँच वर्ष के पाठ्यक्रम में दोवर्षीय उपाध्याय परीक्षा (सीनियर हायर सैकेण्डरी के समकक्ष) माध्यमिक शिक्षा बोर्ड अजमेर से, तीनवर्षीय शास्त्री परीक्षा (बी. ए. के समकक्ष) राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है। जो सरकार द्वारा आई. ए. एस. और आर.ए.एस. जैसी किसी भी सर्वमान्य प्रतियोगी परीक्षाओं में सम्मिलित होने के लिये मान्य है।

❑ आचार्य ज्ञानसागर ग्रन्थमाला - श्रेष्ठ आगम ग्रन्थ तथा अन्य शोध पूर्ण कृतियों को प्रकाशित कर उन्हें अर्द्ध मूल्य में स्वाध्याय हेतु उपलब्ध कराना।

❑ भारतवर्षीय श्रमण संस्कृति परीक्षाबोर्ड -इसकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर द्वारा पंजीकृत पाठशालाओं एवं विभिन्न धार्मिक व लौकिक शिक्षण संस्थाओं में अध्ययन करने वाले छात्र-छात्राओं, प्रौढ़वर्ग (महिला-पुरुष) के लिये धार्मिक परीक्षा आयोजित करना और उन्हें उपाधियाँ प्रदान करना एवं आर्षमार्गीय सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करना है।

❑ धार्मिक शिक्षण शिविर-जैन संस्कृति के संरक्षण, सम्वर्द्धन तथा धार्मिक ग्रन्थों एवं सिद्धान्तों की जानकारी के लिये बालक, युवाओं एवं प्रौढ़ श्रावकों को धर्म में सम्यक् श्रद्धा जागृत करने हेतु आध्यात्मिक शिक्षण एवं प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन करना।

❑ प्रवचन व्यवस्था- दशलक्षणपर्व, अष्टाह्निका पर्व एवं अन्य धार्मिक पर्वों पर देश-विदेश के लिये विद्वानों की व्यवस्था करना।

❑ अनुष्ठान व्यवस्था-पंचकल्याणक, वेदीप्रतिष्ठा, वेदीशिलान्यास एवं समस्त विधि विधानों एवं धार्मिक आयोजनों के लिये श्रेष्ठ प्रतिष्ठाचार्यों एवं विद्वानों की व्यवस्था करना ।

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर, जयपुर